अर्थ सङ्गोष्ठी

(जुलाई २०२०)

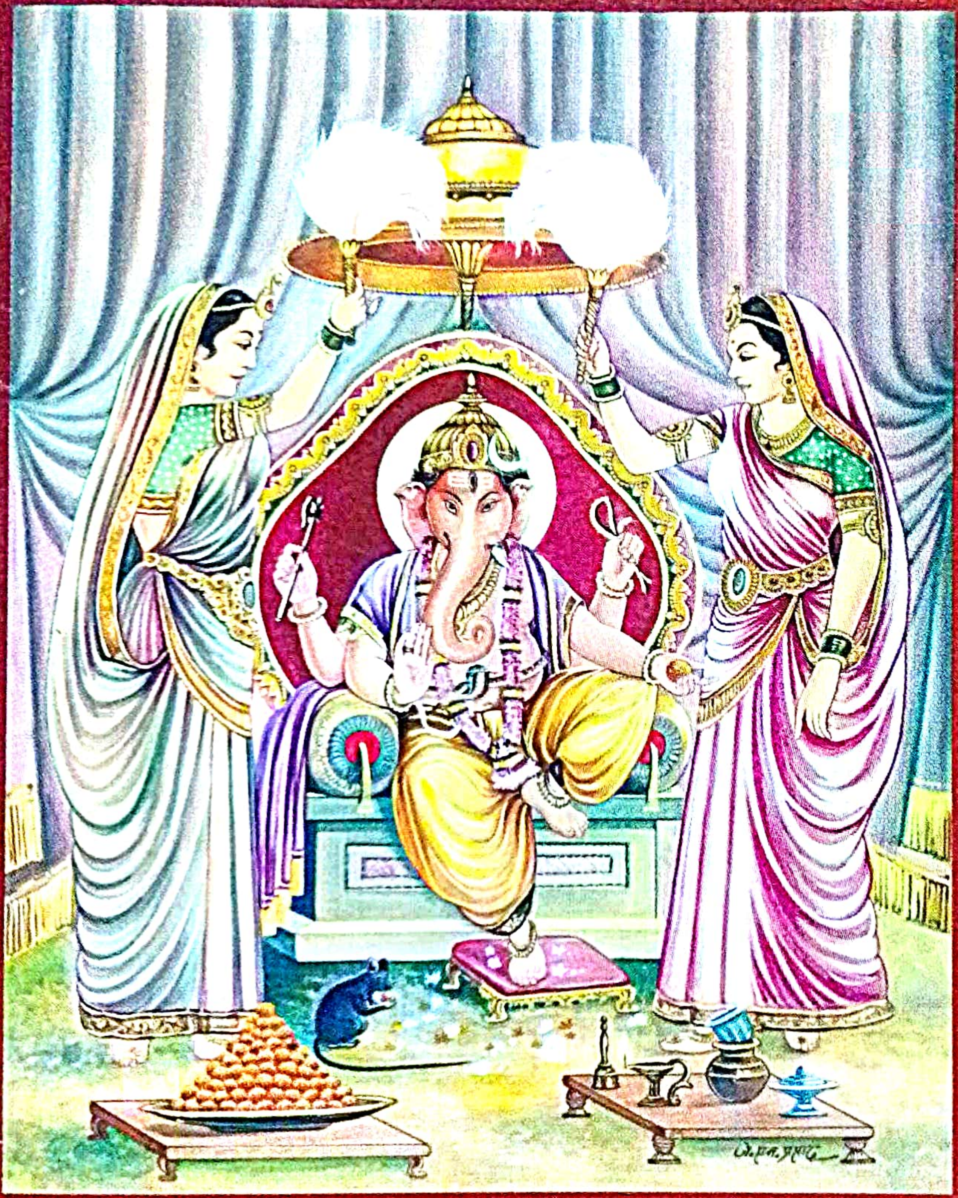

ऋग्वेदीय पूर्वाम्नाय श्रीगोवर्द्धनमठ पुरीपीठाधीश्वर श्रीमज्जगद्गुरु शङ्कराचार्य
स्वामी श्रीनिश्चलानन्द सरस्वती जी महाराज का प्रवचन

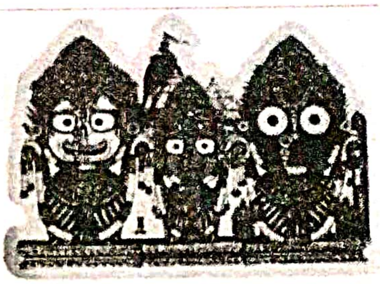

श्री हरिः

श्री गणेशाय नमः

अर्थ सङ्गोष्ठी (जुलाई २०२०)

(ऋग्वेदीय पूर्वाम्नाय श्रीगोवर्द्धनमठ पुरीपीठाधीश्वर श्रीमज्जगद्गुरु शङ्कराचार्य स्वामी श्रीनिश्चलानन्द सरस्वती जी महाराज का प्रवचन)

हमारा लक्ष्य :-

सुसंस्कृत, सुशिक्षित, सुरक्षित, सम्पन्न, सेवा परायण, स्वस्थ और सर्वहितप्रद व्यक्ति तथा समाज की संरचना

सम्पादन – आदित्यवाहिनी हरियाणा

|| श्रीहरिः ||

|| श्रीगणेशाय नमः ||

अर्थ सङ्गोष्ठी (जुलाई २०२०)

विषयानुक्रमणी

क्रम	विषय	पृष्ठ
१.	अर्थ सङ्गोष्ठी (दिवस १)	1
२.	अर्थ सङ्गोष्ठी (दिवस २)	27
३.	अर्थ सङ्गोष्ठी (दिवस ३)	59

इस प्रवचन में निम्नलिखित विषयों का समावेश है -

- जीवन का प्रयोजन
- अनर्थों के चपेट से मुक्त अर्थ ही अर्थ है
- अर्थ की परिभाषा
- जीवों की निसर्गसिद्ध चाह का विषय ही ईश्वर है
- गाढ़ी नींद में द्वन्द्वों की पहुँच नहीं
- सविशेष और निर्विशेष
- अन्न की परिभाषा
- अर्थ और काम की परिभाषा
- धर्म और मोक्ष की परिभाषा
- विकास के नाम पर दूषित होते पञ्चभूत
- भौतिकवादी विषयलम्पट होते हैं
- मन में वेदों की प्रतिष्ठा
- देहात्मभावभावित सिद्धांत से उत्कर्ष सम्भव नहीं
- देहात्मभाव का पर्यवसान पागलपन में
- 98% अर्थ का स्रोत भौतिकवादियों की दृष्टि से ओझल
- वेदविहीन विकास से हम मर्त्यलोक को नरक और नारकीय प्राणियों का समुदाय ही बनायेंगे
- आर्थिक दृष्टि से वर्णाश्रम का महत्त्व
- प्रज्ञाशक्ति, प्राणशक्ति का ह्रास
- उपनिषदों के अनुसार रक्त क्रान्ति, हरित क्रान्ति और श्वेत क्रान्ति
- सनातनियों के प्रमाद के कारण अन्य तन्त्रों की उद्भावना हुई
- ब्रह्माण्ड के सब प्राणियों के पोषण का दायित्व मनुष्य पर
- व्यष्टि और समष्टि
- राज्य को बाजार का सौदा न बनावे
- पृथ्वी के धारक तत्वों का विलोप
- सिद्ध और साध्य कोटि का धर्म

★★★★★

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीगणेशाय नमः

अर्थ सङ्गोष्ठी (जुलाई २०२०)

(दिवस १)

मान्य महानुभावोंने आस्था और अपनत्वपूर्वक बहुत ही परिमार्जित भावोंको व्यक्त किया। मैंने भी आस्था और अपनत्वपूर्वक उन भावोंको श्रवण करनेका, आत्मसात करनेका भरसक प्रयास किया है। मैं एक संकेत करता हूँ - **श्रीमद्भागवत प्रथम स्कंध, अध्याय 2, श्लोक 8, 9, 10, 11, इनका आप अनुवादसहित अध्ययन और अनुशीलन करें। मैं समझता हूँ पुरुषार्थचतुष्टय में सामञ्जस्य साधनेकी जो स्वस्थ विधा और जीवनके लक्ष्यका जो स्वरूप इन श्लोकोंके माध्यमसे व्यक्त किया गया है, अन्यत्र मिल पाना कठिन है**। फिर से सुनिये - श्रीमद्भागवत प्रथम स्कंध, अध्याय 2, श्लोक 8, 9, 10, 11, पुरुषार्थचतुष्टय में जो सामञ्जसस्य साधा गया है, जीवनका जो लक्ष्य निर्धारित किया गया है, वह अन्यत्र सूत्र शैलीमें प्राप्त होना दुर्गम है। साथ ही साथ आप महानुभावोंके प्रमोद के लिये मैं एक संकेत करता हूँ - **श्रीमद्भागवत 11वां स्कंध के 23वें अध्याय में भिक्षु गीतम् के माध्यमसे पंद्रह अनर्थों के चपेट से कदाचिद् कोई अर्थ को मुक्त कर सके तब तो अर्थ का नाम अर्थ है नहीं तो अनर्थ है।**

स्तेयं से शुरू किया गया है श्लोक... **द्यूत, मद्य, चोरी, स्पृहा, हिंसा आदि पंद्रह अनर्थों के चपेट से कदाचित् कोई अर्थ को मुक्त करनेमें समर्थ होता है तब तो अर्थ अर्थ में प्रयुक्त और विनियुक्त होता है अन्यथा अर्थ के गर्भ से अनर्थ की ही प्राप्ति होती है।** मैंने संकेत किया....।

अब समय कि सीमा में अर्थ के सम्बन्धमें शास्त्रसम्मत भावोंको व्यक्त करना मैं उचित समझता हूँ। श्रीमद्भगवद्गीता के 13वें अध्याय में भगवान् श्री कृष्णचन्द्र का एक वचन है अर्जुन के प्रति "***अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्।***" ; यहाँ अर्थ शब्द का प्रयोग भगवान् ने किया है। तत्त्वज्ञान के प्रयोजन का अनुदर्शन करना चाहिये। यहाँ अर्थ शब्द का प्रयोग प्रयोजन के अर्थ में किया गया है। पुरुषार्थचतुष्टय में भी अर्थ शब्द सन्निहित है, जैसा कि आप महानुभावों ने संकेत भी किया। पुरुषार्थ... पुरुष के आगे अर्थ शब्द यहाँ भी सन्निहित है। **पुरुष** का अर्थ होता है साङ्ख्य प्रस्थान, वेदान्त प्रस्थान के अनुसार **'जीवात्मा'**। लेकिन पुरुषार्थचतुष्टय की सिद्धिके अनुरूप देह, इन्द्रिय, प्राण, अंतःकरण से युक्त मनुष्यों का शरीर / जीवन है, अतः विवक्षावसाद प्रसङ्गानुसार पुरुष का अर्थ मनुष्य कर दिया जाता है। तो जीव के प्रयोजन का नाम पुरुषार्थ है। **जीव के जीवन का जो प्रयोजन है उसीका नाम पुरुषार्थ है।** तो अब ध्यान दीजिये, पुरुषार्थचतुष्टयमें अर्थ शब्द सन्निहित है। और धर्म, अर्थ,

काम, मोक्ष जब कहते हैं तो स्वतन्त्र पुरुषार्थ के रूप में भी अर्थ का उल्लेख है। तो **जीवोंके जीवन का प्रयोजन और उसकी पूर्ति का जो प्रकल्प है उसीका नाम सनातन शास्त्रोंके अनुसार अर्थ होता है। यह मैंने अर्थ की परिभाषा अभिव्यक्त की।**

अब थोड़ा सावधान! ***सर्वं खल्विदं ब्रह्म, तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय, सोऽकामयत, तदात्मानं, स्वयमकुरुत....*** इन उपनिषदों के वचनों के अनुसार **हम जिस परमात्मा को मानते हैं वेदादि शास्त्रों के आधार पर। वे भगवान् या परमात्मा जगत् बनाने वाले और बनने वाले दोनों हैं। इसको हम दार्शनिक शब्द में कहते हैं अभिन्ननिमित्तोपादान कारण हैं। आधुनिक चुलबुली भाषा में कहें तो Maker और Matter दोनों ही हैं। हमारे भगवान् जगत् बनाते भी हैं, जगत् बनते भी हैं। इसलिये सर्व रूपों में भगवत्तत्व की ही अभिव्यक्ति है।** इसी से अर्थ का स्रोत प्राप्त होता है, ध्यानपूर्वक सुनें। हमारे यहाँ एक 'पृथ्वी' शब्द है, अंग्रेजी वाले उसको Earth कहते हैं। अंग्रेजी में अनुवाद करेंगे तो भू या पृथ्वी या भूमि को Earth भी कह देते हैं। **श्रीसूक्त के अनुसार पृथ्वी अर्थ है, पानी अर्थ है, प्रकाश अर्थ है, पवन अर्थ है, आकाश अर्थ है... इसका अर्थ क्या हुआ? परम अर्थ परमात्मा की जो भी अभिव्यक्ति है उसी का नाम अर्थ है। परम अर्थ परमात्मा हैं, उनकी जो भी अभिव्यक्ति है सबका नाम अर्थ है।** अर्थ की प्रशस्त परिभाषा यही हो सकती है। **आधुनिक**

परिपेक्ष में भी पृथ्वी को अर्थ माना जाएगा या नहीं? अर्थ की आप जो भी परिभाषा करेंगे उसका उद्गम स्थान (स्रोत) तो पृथ्वी को मानना ही पड़ेगा। पृथ्वीका उपादान मूल कारण जल है, जल भी अर्थ है, तेज भी अर्थ है, वायु भी अर्थ है, आकाश भी अर्थ है। तो अर्थ की पहली समग्र परिभाषा क्या हो सकती है? - परम अर्थ परमात्मा की जो भी अभिव्यक्ति है उसका नाम अर्थ है। और अंत में अर्थ की चरम परिभाषा क्या हो सकती है?- परम अर्थ परमात्मा की अभिव्यक्ति, उपलब्धि या प्राप्ति में साक्षात् (सीधे) अथवा परम्परासे जिसका उपयोग और विनियोग हो उसीका नाम अर्थ है। नहीं तो जीवन व्यर्थ है।

श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कंध के द्वितीय अध्याय का मैंने उल्लेख किया - इतना सा वचन आप याद कर लें, मन में सन्निहित कर लें - ***'जीवस्य तत्व जिज्ञासा '*** , इसकी संक्षिप्त मीमांसा मैं करता हूँ, व्याख्या करता हूँ, सावधान! - जीविका जीवन के लिये है, आप जीविका की उपेक्षा मत कीजिये लेकिन जीवन जीविका के लिये नहीं है, जीवन है जीवनधन जगदीश्वर / परमात्मा की अभिव्यक्ति के लिये। इतना उत्तम सन्देश हमको श्रीमद्भागवत के माध्यमसे प्राप्त है। ***'जीवस्य तत्व जिज्ञासा '*** - **सावधान! आप कभी भी जीविका की उपेक्षा मत कीजिये लेकिन जीविका जीवन के लिये हो, कदाचिद् जीवन ही जीविका के लिये न हो जाय। भौतिकवादियों**

की दृष्टि क्या होती है- जीविका जीवन के लिये है और जीवन जीविका के लिये है। लेकिन हमारे यहाँ जीविका की उपेक्षा कहीं नहीं की गयी लेकिन जीविका जीवन के लिये है, जीवन जीविका के लिये नहीं है, जीवन है जीवनधन जगदीश्वर की अभिव्यक्ति या प्राप्ति के लिये। इस सिद्धांत को अगर हम मन में बैठा लेते हैं तदनुकूल व्यवहार करते हैं तो जीवन दिशाहीन होने से बच सकता है।

हमने जीवनधन जगदीश्वर का नाम लिया कई बार, जीवनधन क्यों कहा गया इसपर भी विचार अभिव्यक्त करना आवश्यक है। बहुतसे महानुभाव अपनेआपको निरीश्वरवादी, अनीश्वरवादी कहते हैं। ईश्वर नहीं है, परमात्मा नहीं है, भावुकों की कपोल कल्पना का नाम ही ब्रह्म है... यह सब अनर्गल प्रलाप करते हैं। लेकिन हमारे पूज्य गुरुदेव धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्री जी महाभाग ने एक अद्भुत निबंध लिखा जो हमारे यहाँ से पुस्तक के रूप में प्रकाशित है- 'नास्तिक भी आस्तिक'। भक्ति-सुधा नामक ग्रंथ गीताप्रेस से प्रकाशित है, उसमें एक निबंध है 'नास्तिक भी आस्तिक'। पृथक् से भी हमने उस निबंध को ग्रंथ का रूप दिया है पूज्य गुरुदेव के नामपर। इसपर ध्यान दें- **विश्व में सचमुच में ईश्वर को न मानने वाला भी वास्तव में हृदय से ईश्वर को स्वीकार करता है। कोई भी अनीश्वरवादी अपने को कहे लेकिन ईश्वर के प्रति निसर्गसिद्ध आस्था सबके हृदय में सन्निहित है। भला कैसे? जीवों**

की चाह का जो सचमुच में विषय है, वास्तव विषय है या वास्तविक विषय है या असली विषय है, उसी का नाम उपनिषदों में ईश्वर / परमात्मा / आत्मा या ब्रह्म है। फिर से सुनिये, चाहे स्थावर प्राणी हों, चाहे जङ्गम प्राणी हों। तरु, लता, गुल्म इत्यादि स्थावर प्राणी कहे जाते हैं; पशु, पक्षी, मनुष्य आदि जङ्गम प्राणी कहे जाते हैं, सब की अंतर्निहित भावना का अनुशीलन, अनुदर्शन हम कर सकते हैं; या अपने जीवन की प्रवृत्ति और निवृत्ति का परिज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। हमारी चाह का या इच्छा का जो सचमुच में विषय है, उसी का नाम ईश्वर / परमात्मा या भगवान् है। हम क्या चाहते हैं - ऐसा जीवन जहाँ मौत की छाया भी न पहुँच सके। अमीबा नामक जन्तु सबसे सूक्ष्म होता है। उसे भी छेड़ने का प्रयास कीजिये तो मरनेसे बचनेके लिये उद्यम करता है। **जितने प्राणी हैं, सबके हृदय में निःसर्गसिद्ध भावना क्या है - पहली भावना सन्निहित है- ऐसा जीवन जहाँ मौत की छाया भी ना पहुँच सके। मृत्युञ्जय होकर, अमृत स्वरूप होकर, मृत्यु से पारंगत होकर, सत्य होकर नित्य होकर हम शेष रह सकें। ऐसी भावना है या नहीं? इसी का नाम तो ब्रह्म है - *'सत्यं ब्रह्म'*, जो नित्य है, सत्य है, जिसका कभी नाश नहीं हो सकता और जो सबकी चाह का सचमुच में विषय है, उसी का नाम परमात्मा है। अब कौन परमात्मा का खण्डन करेगा?**

फिर हम क्या चाहते हैं? - ऐसा ज्ञान, ऐसी चेतना जो जड़ता से विमुक्त हो, जहाँ जड़ता की, अज्ञता की छाया भी न पहुँच सके, उसी का नाम तो परमात्मा है। *' ज्ञानम् ब्रह्म , विज्ञानम् आनन्दं ब्रह्म '* । उसी का नाम चेतन है। **हमारी चाह का जो सचमुच में विषय है - चित् स्वरूप, ऐसा विज्ञान जो कभी अज्ञान का रूप न धारण कर सके। ऐसा जीवन - *'तमसो मा ज्योतिर्गमय'*, जहाँ नासमझी, मूर्खता, अज्ञता, जड़ता की गन्ध भी न पहुँच सके; जड़ता, अज्ञता, नासमझी से विमुक्त जीवन चाहते हैं, तो वह क्या है - उसी का नाम ज्ञान है, उसी का नाम चित् है। तो हम ईश्वर को तो हृदय से मानते हैं।**

साथ-ही-साथ हमारी भावना होती है ऐसा जीवन जहाँ दैहिक, दैविक, भौतिक त्रिविध तापों में किसी ताप की प्राप्ति न हो, व्याप्ति न हो, पहुँच न हो, उसी का नाम आनन्द है। *'आनंदो ब्रह्म'* कहा, *आनन्दं ब्रह्म* कहा, इसका अर्थ क्या है? हमारी निःसर्गसिद्ध चाह के विषय का नाम ही परमात्मा है भगवान् है ईश्वर है। इस ढंग से अगर हम ईश्वर / परमात्मा / भगवान् को परिभाषित करेंगे तो कोई भी नास्तिक नहीं बचेगा। सबके हृदय में अपने अस्तित्व के प्रति, विज्ञान के प्रति, आनन्द के प्रति आस्था ही है। एक संकेत और मैं करता हूँ - कोई कह सकता है कि सातवें आसमान की बात है, कपोल कल्पना है, भावुकता की पराकाष्ठा है, ऐसा तत्व कैसे हो सकता है? क्या सम्भव है कि मृत्यु से पारङ्गत जीवन हमको प्राप्त हो

जाय जहाँ मौत की छाया भी न पहुँच सके, जड़ता-अज्ञता से पारङ्गत जीवन प्राप्त हो जाय जहाँपर कभी भी जड़ता की अज्ञता की पहुँच न हो सके, त्रिविध तापों से पारङ्गत जीवन हमको प्राप्त हो जाय जहाँ कहीं भी दुःख, वेदना, ताप-संताप की पहुँच न हो सके। उदाहरण हमारे पास है। हमको-आपको गाढ़ी नींद की प्राप्ति होती है। सम्भल कर आप सुन ही रहे हैं, तत्परतापूर्वक आप सुन ही रहे हैं। **यह सार्वभौम सिद्धांत है, कोई भी इसका निराकरण नहीं कर सकता। गाढ़ी नींद में हिंदू हो या अहिंदू, शिक्षित हो या अशिक्षित, नर हो या वानर। जिसे गाढ़ी नींद की समुपलब्धि होती है, जब तक गाढ़ी नींद की प्राप्ति रहती है तब तक सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास किसी भी द्वन्द्व की पहुँच गाढ़ी नींद में हम जीवों तक नहीं होती। काम, क्रोध, लोभ, मोह, शोक ये सब जितने मनोविकार हैं उन मनोविकारों की पहुँच हमतक गाढ़ी नींद में नहीं होती।** अनुभव के बल पर यह तथ्य सिद्ध है। **गाढ़ी नींद में अनुभूति होती है, नींद टूटने पर उसकी स्मृति होती है। बिना अनुभूति की स्मृति सम्भव ही नहीं है। गाढ़ी नींद में जो कोई होता है, हम-आप होते हैं प्रायः नित्य पाँच-सात घण्टे, जबतक गाढ़ी नींद हमको सुलभ होती है तब तक मृत्यु का भय हमको प्राप्त नहीं होता। मरणासन्न व्यक्ति को भी कदाचित् एक क्षण के लिये गाढ़ी नींद की प्राप्ति हो जाय तो उसे मृत्यु के भय की प्राप्ति गाढ़ी नींद में नहीं होगी। और विचित्र बात यह है कि दैहिक, दैविक, भौतिक त्रिविध तापों में किसी भी ताप की पहुँच**

गाढ़ी नींद में नहीं होती। ताप की प्राप्ति और व्याप्ति गाढ़ी नींद में नहीं होती। इसका अर्थ क्या हुआ? सच्चिदानन्दस्वरूप होकर, अपने स्वरूप के अनुरूप होकर, मृत्युग्रस्त जड़ दुःख प्रपञ्च से विविक्त होकर हम गाढ़ी नींद में शेष रहते हैं। गाढ़ी नींद में केवल एक त्रुटि है - मृत्यु, जड़ता, दुःख का बीज अज्ञान शेष है। कदाचित् हम ब्रह्म-आत्म तत्व के एकत्व विज्ञान, अध्यात्म विज्ञान के प्रभाव से मृत्यु, जड़ता, दुःख के बीज को भी भून डालने में समर्थ हों ज्ञानाग्नि के द्वारा तो देहत्याग के बाद सदा के लिये सच्चिदानन्दस्वरूप होकर ही शेष रहेंगे। और इस बोध के बाद जीवनकाल में मृत्यु, जड़ता, दुःख से आक्रान्त होकर हम शेष नहीं रहेंगे। अबतक हमने क्या संकेत किया - जीविका जीवन के लिये है, जीवन जीविका के लिये नहीं है, जीवन है जीवनधन जगदीश्वर की प्राप्ति के लिये।

एक और मैं संकेत करता हूँ ताकि यह न हो कि हम सच्चिदानन्दस्वरूप होकर शेष रह सकते हैं? क्या सचमुच में हमारा जीवन सच्चिदानन्द ही है? भगवद्गीता के पन्द्रहवें अध्याय और रामचरितमानस की ओर आपका ध्यान मैं आकृष्ट करना चाहता हूँ ***'ममैवांशो जीवलोके'... 'ईश्वर अंश जीव अविनाशी, चेतन अमल सहज सुख राशि'*** अब वैज्ञानिक धरातल पर मैं एक वाक्य की संरचना करता हूँ, सावधान! प्रत्येक अंश स्वभावतः अपने अंशी की ओर आकृष्ट होता है। न्यूटन जी ने भले ही वैशेषिक दर्शन आदि का

नाम न लिया हो, गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत का श्रेय उन्हीं को प्राप्त हुआ हो लेकिन गुरुत्वाकर्षण के सम्बन्ध में जो कुछ भाव व्यक्त किया जा सकता है भगवद्गीता के पन्द्रहवें अध्याय के अनुसार सुन लीजिये - प्रत्येक अंश स्वभावतः अपने अंशी की ओर आकृष्ट होता है। रामचरितमानस में ***'ईश्वर अंश जीव अविनाशी, चेतन अमल सहज सुख राशि',*** तो मैं एक संकेत करता हूँ उदाहरण देता हूँ - एक फल है, सेब मान लीजिए, पार्थिव है वो, उसमें गन्ध है। जिस वस्तु में गन्ध नामक गुण की प्रतिष्ठा होती है उसे पार्थिव कहते हैं, पृथ्वी का कार्य कहते हैं। एक फल को मैंने पकड़ा बल और वेगपूर्वक ऊपर फेंक दिया, बल और वेग के निरस्त होने पर वह सेब पृथ्वी की ओर समाकृष्ट होने में समर्थ है, वृक्ष में लगा हुआ पत्र है, पुष्प है, फल है... जब अपने उद्गम स्थान से वह च्युत होता है तो पृथ्वीकी ओर ही क्यों आकृष्ट होता है? यहाँ गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत क्रियान्वित होता है कि प्रत्येक अंश स्वभावतः अपने अंशी की ओर आकृष्ट होता है।

आगे चलिये - जलधारा सागर की ओर ही क्यों जाती है? जलधारा अंश है, सागर/ समुद्र / महोदधि उद्गम स्थान है। प्रत्येक अंश स्वभावतः अपने अंशी की ओर आकृष्ट होता है।

दीप प्रज्वलित करते हैं तो दीप की ज्वाला / अग्निशिखा नभोमण्डल की ओर क्यों अग्रसर होती है? क्योंकि सूर्य जो हैं नभोमण्डल में विद्यमान वे अंशी हैं। प्रत्येक अंश स्वभावतः अपने

अंशी की ओर ही आकृष्ट होता है। हम जीव भी सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा के अंश सरीखे हैं। प्रतिक्षण हमारे आकर्षण का विषय सच्चिदानन्द तत्व ही होता है। उसकी अभिव्यक्ति या प्राप्ति के लिये ही ज्ञात या अज्ञात में हमारी सब प्रवृत्ति और निवृत्ति होती है।

अब मैं एक संकेत करता हूँ ध्यान दें ! अगर अर्थ की समग्र परिभाषा और व्याख्या समझने की भावना हो तो श्रीमद्भागवत के चौथे स्कंध में पृथु जी का इतिहास या आख्यान है उसको पढ़ना अत्यंत आवश्यक है। उससे आप अर्थशास्त्र के विशेषज्ञों को पर्याप्त प्रेरणा मिलेगी और अर्थ का समग्र स्वरूप हृदयङ्गम करने में भी सुगमता होगी। पृथु जी ने, पृथ्वी जो कि गाय के रूप में व्यक्त थी, पात्र / वत्स, दोग्धा के भेद से उससे विभिन्न प्रकार के अन्न को प्राप्त किया। बहुत महत्वपूर्ण अध्याय है, स्कंध चौथा, श्रीमद्भागवत में पृथु जी का जो आख्यान है, बहुत महत्वपूर्ण है वह अर्थशास्त्र की दृष्टि से। फिर से सुनिये - परमात्मा से अधिष्ठित प्रकृति -

मयाऽध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनाऽनेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते।। (गीता 9.10)

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्। (गीता 14.3)

भगवान् के समाश्रित उनकी शक्ति प्रकृति है जिसको माया कहते हैं। प्रकृति का कार्य आकाश है - ***तस्माद्वा एतस्मात् आत्मनः आकाशः सम्भूतः*** (तैत्तरीयोपनिषद्)। आकाश का कार्य वायु है, वायु का कार्य तेज है, तेज का कार्य जल है, जल का कार्य पृथ्वी है। सन्निकट सविशेष का नाम कार्य होता है। सन्निकट निर्विशेष का नाम कारण होता है। कार्य और कर्ण की सटीक परिभाषा वैज्ञानिक गोष्ठी में मैंने कही थी। सन्निकट (नज़दीक / करीब) विशेषता से युक्त का नाम कार्य होता है। सन्निकट निर्विशेष का नाम कारण होता है। कार्य और कारण की यह अद्भुत परिभाषा है। उदाहरण के लिये - पृथ्वी का कारण कौन हो सकता है? पृथ्वी में पाँच गुण हैं - शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध। पाँच के सन्निकट कौन सी संख्या है गणित की दृष्टि से - चार। **पृथ्वी का उपादान कारण वही हो सकता है जो पृथ्वी की अपेक्षा सन्निकट निर्विशेष हो। वह जल ही सिद्ध है।** मैं एक संकेत करता हूँ, वैज्ञानिक सम्मेलन में मैंने यहाँ कहा था - तत्वों की परिभाषा तो निर्धारित की गयी, हम जब पढ़ते थे 9वीं, 10वीं में तो लगभग 100 एलिमेंट्स थे। आजकल 118-119 तक गिन लिये गये। लेकिन उन सब का अंतर्भाव 5 में ही होना चाहिए। जो भी कार्य कोटि का प्रपञ्च है उसका अंतर्भाव पाँच में ही होता है। हथेली एक है, उँगलियाँ सामान्य रूप से पाँच हैं। इसी प्रकार ये जो तरु, लता, गुल्म इत्यादि हैं, गेहूँ, चने आदि हैं, ये तत्वांतर परिणाम नहीं हैं। इनको लेकर कोई तत्व की संख्या में वृद्धि नहीं होती। सबसे

अंतिम कार्य कौन हो सकता है इस पर विचार करें तो - जो कार्य अपने से अधिक विशेषता वाली वस्तु को उत्पन्न करने में समर्थ न हो उसी का नाम अंतिम कार्य है। पृथ्वी से वृक्ष इत्यादि उत्पन्न होते हैं, विविध प्राणियों के शरीर भी उत्पन्न होते हैं लेकिन उनमें कोई छठी विशेषता नहीं होती। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध के अतिरिक्त छठी विशेषता नहीं होती। पृथ्वी चरम कार्य है। पृथ्वी का कारण जल ही हो सकता है क्योंकि उसमें 5 नहीं केवल 4 गुण हैं। जल में स्वभाव से गन्ध नहीं होता, जल स्वभाव से निर्गन्ध होता है। जल का कारण तेज ही हो सकता है क्योंकि उसमें स्वभाव से तीन ही गुण हैं। और तेज का कारण वायु ही हो सकता है क्योंकि उसमें स्वभाव से दो ही गुण हैं। और वायु का कारण आकाश ही हो सकता है क्योंकि उसमें स्वभाव से एक ही गुण है - शब्द। और आकाश का कारण कौन हो सकता है - अव्यक्त। जो शब्द की भी बीजावस्था को संजोये हुए है। और जैसे बीज चना, मटर, जौ इत्यादि हैं उनमें अंकुरोत्पादिनी शक्ति दग्ध कर दें या घुन लग जाय तो बीज का पर्यवसान फिर पृथ्वी ही है। इसी प्रकार से **प्रकृति में जो प्रपञ्चोत्पादिनी शक्ति सन्निहित है उसको अगर हम कर्षित कर लें, प्रकृति में प्रपञ्चोत्पादिनी शक्ति न रहे तो प्रकृति का पर्यवसान सत् स्वरूप, चित् स्वरूप, आनन्द स्वरूप परमात्मा में ही होता है।**

तो हमने क्या संकेत किया- पृथ्वी फल है। भगवान् शङ्कराचार्य महाभाग ने छान्दोग्य उपनिषद् के सातवें अध्याय के भाष्य में एक

सूत्रात्मक वाक्य लिखा - *'फलावसानं जगत्'*। आप, हम आम इत्यादि का पौध लगाते हैं, छाया आदि की प्राप्ति होती है लेकिन भाव यह होता है कि फल मिले तो परमात्मा प्रकृति के योग से आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी के रूप में अभिव्यक्त होते हैं। **पृथ्वी चरम कार्य है तो एक नियम है कि कार्य में कारण का सन्निवेश होता है। दूध दही बन जाय तो फिर दूध की उपलब्धि दही में नहीं होती, दही का पर्यवसान फिर दूध नहीं होता। लेकिन मिट्टी से घट बन जाय तो फिर घट में मिट्टी की अनुगति होती है, घट का पर्यवसान पृथ्वी होती है। जल तरङ्ग में जल की अनुगति होती है, कारण की अनुगति कार्य में होती है।** इस दृष्टि से मैंने विचार करके क्या कहा? पृथ्वी का अर्थ क्या है? पृथ्वी जिसमें जल भी सन्निहित है, तेज भी सन्निहित है, वायु भी सन्निहित है, आकाश भी सन्निहित है, प्रकृति भी सन्निहित है, परमात्मा भी सन्निहित है। अर्थात् इन तत्वों में जो निसर्गसिद्ध क्षमता है सबको संजोने वाली पृथ्वी है। इसलिये पृथु जी के उपाख्यान में बताया गया कि पृथ्वी गाय के रूप में व्यक्त हुई।

'जय जय सुरनायक...... तो इसका मतलब पृथ्वी पर जब संकट आता है तो ब्रह्मा जी के पास पृथ्वी गाय का रूप धारण करके जाती है।

ऋग्वेद आदि में भूसूक्तम् है। पृथ्वी के केन्द्र का वर्णन है। अमेरिका आदि के वैज्ञानिकों ने 10-12 साल पहले जो अविष्कार किया... भूसूक्तम् के आधार पर सिद्ध होता है कि पृथ्वी का केन्द्र क्या है। फिर उन वैज्ञानिकों को यह भी प्राप्त हुआ कि वास्तव में पृथ्वी की जो आकृति है एक चेतन गाय के समान है। हमारे यहाँ बहुत ही सूक्ष्म दृष्टि का आलम्बन लेकर पृथ्वी के समग्र प्रतीक के रूप में गोवंश को माना गया है। गाय के रूप में पृथ्वी प्रकट हुई। दोग्धा के भेद से, पात्र के भेद से और वत्स (बछड़ा) के भेद से पृथ्वी ने किस प्रकार के अन्न को दिया। अन्न का नाम अर्थ हो गया यहाँपर। पहले तो मैंने कहा पृथ्वी अर्थ है, जल अर्थ है, तेज अर्थ है, वायु अर्थ है, आकाश अर्थ है, प्रकृति अर्थ है, परमात्मा अर्थ है, परम अर्थ परमात्माकी जो भी अभिव्यक्ति है उसका नाम अर्थ है। परम अर्थ परमात्मा की जो भी अभिव्यक्ति / प्राप्ति में जिसका साक्षात् या परम्परा से उपयोग हो वह अर्थ है।

अब हम अन्न की दृष्टि से .... भोग्य सामग्री का नाम अर्थ होता है। महाभारत में, विश्व में जितने स्थावर-जङ्गम प्राणी हैं, निसर्गसिद्ध उनका जो आहार है उसका नाम अन्न है। अन्न शब्द बहुत व्यापक है। ***अद्यते अन्नेन*** - यह सब तैत्तिरीय उपनिषद् में अन्न की निरुक्ति भी है। मैंने संकेत किया।

पृथ्वी का दोहन किया तो सत्रह प्रकार के अन्न की अभिव्यक्ति हुई, महाभारत के अनुसार। श्रीमद्भागवत में जो चतुर्थ स्कंध में पृथु जी का उपाख्यान है, उसको पढ़ने पर ***अन्नं बहु कुर्वीत*** (तैत्तिरीय उपनिषद् में देखिये)। उपेक्षा की गयी क्या? शासक का काम है, कृषक का काम है, समाज का काम है, व्यक्ति का काम है अन्न का उत्पादन पर्याप्त होना चाहिए। ताकि अन्न के अभाव में कोई प्राणी जीवन में कष्ट का अनुभव ना करे। अन्न के प्रभेद पर विचार किया जाये तो बहुत बढ़िया है... अब एक विचार है - देवता भी अन्न प्राप्त करते हैं, सिद्ध को भी अन्न चाहिए और व्याघ्र इत्यादि को भी अन्न चाहिए, मनुष्यों को भी अन्न चाहिए, पशु-पक्षी को भी अन्न चाहिए; अन्न के प्रभेद का वर्णन श्रीमद्भागवत में है। तो अन्न के कितने प्रभेद हैं? संगीत भी अन्न है। **जिससे आह्लाद उत्पन्न हो, जीवनी शक्ति की परिपुष्टि हो, देह, इन्द्रिय, प्राण और अंतःकरण में बल और वेग का सञ्चार हो, उसका नाम अन्न है। भोग्य सामग्री का नाम सज्जनों अर्थ है।** और अन्न क्या है - अर्थ है। पुरुषार्थ चतुष्टय में जो अर्थ शब्द का प्रयोग किया जाता है तो मैं संकेत करना चाहता हूँ - भोग्य सामग्री का नाम अर्थ है। उसके सेवन से जो देह, इन्द्रिय, प्राण, अंतःकरण की पुष्टि होती है और आह्लाद की अभिव्यक्ति होती है उसी का नाम काम है। फिर से सुनिये - **भोग्य सामग्री का नाम अर्थ है, उसके सेवन से जो जीवन में पुष्टि और प्रमोद की स्फूर्ति होती है उसी का नाम काम है।** मैं एक संकेत करता हूँ - आपको स्थल बताता जाता

हूँ महाभारत के वनपर्व में भीमसेन ने काम पुरुषार्थ को विस्तार पूर्वक परिभाषित किया है क्योंकि भीमसेन वायु के अवतार थे। जिसके जीवन में वायु की प्रधानता होती है, उसके जीवन में काम का उद्रेक अधिक होता है, यह मनोविज्ञान है। तो भीमसेन जी ने काम नामक पुरुषार्थ को परिभाषित किया है। **तैत्तिरीय उपनिषद् के अनुसार प्रिय, मोद और प्रमोद का नाम काम है। किसी भी अभीष्ट वस्तु को देखकर या अभीष्ट वस्तु या व्यक्ति की उपलब्धि के बाद जो जीवन में आह्लाद उत्पन्न होता है उसका नाम है *प्रिय*। उस वस्तु का सेवन जब आरम्भ कर देते हैं तब जो आह्लाद उत्पन्न होता है उसका नाम है प्रिय की अपेक्षा उन्नत आनन्द - *मोद* । उस वस्तु का यथेच्छ सेवन कर लेने पर बाह्याभ्यंतर जो आह्लाद की अभिव्यक्ति होती है, अंग्रेज़ी में जिसको ओवरफ्लोइंग कह सकते हैं, उसका नाम है - *प्रमोद।* प्रिय, मोद, प्रमोद की स्फूर्ति का नाम ही 'काम' है।** तो अबतक मैंने क्या कहा? बिल्कुल विभाजन है। **भोग्य सामग्री का नाम हो गया अर्थ, उसके सेवन से प्राप्त पुष्टि और तृप्ति का नाम है काम। *भोजन करिअ तृपिति हित लागि*।** श्रीमद्भागवत के एकादश स्कंध के अनुसार मैं बोल रहा हूँ। और आपकी हमारी अनुभूति के अनुसार भी मैं बोल रहा हूँ। हमने अभीष्ट भोजन किया। अभीष्ट भोजन करने पर पृथक् प्रयास नहीं करना पड़ा, तीन फलों की एक साथ प्राप्ति हो गयी। भोजन अभीष्ट मिल जाय तो भूख की निवृत्ति,

देह, इन्द्रिय, प्राण, अन्तः करण में पुष्टि, बल का संचार और अंतिम फल है तृप्ति। तो इसी का नाम काम हो गया।

भोजन का नाम अर्थ हो गया, भोजन के करने से जो पुष्टि की प्राप्ति हुई तृप्ति की प्राप्ति हुई उसी का नाम हो गया सज्जनों काम। उदाहरण के लिये - पानी है। इसका नाम अर्थ हो गया। पानी के पीने पर जो प्यास के निवृत्ति हुई, देह, इन्द्रिय, प्राण, अन्तः करण में पुष्टि, बल का संचार और अंत में तृप्ति हुई, इसी का नाम **काम** है। अर्थ और काम ये क्या हैं - स्थावर जङ्गम जितने प्राणी हैं सबके लिये सामान्य पुरुषार्थ हैं, सार्वभौम पुरुषार्थ हैं। कोई भी अर्थ और काम का खण्डन नहीं कर सकता क्योंकि ये सार्वभौम पुरुषार्थ हैं। तरु, लता, गुल्म इत्यादि को भी अनुकूल खाद-पानी देते हैं तो अनुकूल खाद-पानी उनके लिये अर्थ हैं। उनके सेवन से जो उन्हें पुष्टि होती है, तृप्ति होती है या आह्लाद उन्हें प्राप्त होता है, उसका नाम काम है।

अब धर्म की क्या आवश्यकता रह गयी? **अर्थोपार्जन की, विषयोपभोग की वह विधा, जिस विधा का अनुपालन करने पर जीवन दिशाहीन न हो और जीवनधन जगदीश्वर की अभिव्यक्ति के अनुकूल जीवन में बल और वेग का सञ्चार हो उसका नाम धर्म है।** अब धर्म का खण्डन कौन कर देगा विश्व में? फिर से सुनिये - अर्थोपार्जन की वह विधा - **'धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ'** (गीता 7.11) यहाँ पर काम अर्थ का भी उपलक्षण है। धर्म की जीवन

में क्यों आवश्यकता है? **अर्थोपार्जन की, विषयोपभोग की वह विधा जिसके फलस्वरूप हम दूसरों के लिये अनावश्यक शोषक सिद्ध ना हों, हमारे देह, इन्द्रिय, प्राण, अंतःकरण जो हमें प्राप्त हैं उनका पोषण हो और अंत में जीवन में वह बल और वेग प्राप्त हो कि हम सच्चिदानन्दस्वरुप परमात्मतत्त्व को हृदयङ्गम करके मृत्यु, जड़ता, दुःख के चपेट से सदा के लिये मुक्त होने में समर्थ हों, इसी का नाम है धर्म।** ***अर्थोपार्जन की स्वस्थ विधा, विषयोपभोग की स्वस्थ विधा और जिस विधा का पर्यवसान दुःख में न हो बल्कि जीवन के में उस बल और वेग के संचार में हो जिसके फलस्वरूप हम जीवन के लक्ष्य को पूर्ण कर सकें, उसी का नाम सज्जनों धर्म है।***

मोक्ष क्या है? श्रीमद्भागवत में मोक्ष को परिभाषित किया है। दूसरा स्कंध - **मुक्तिर्हित्वान्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः, अनात्म वस्तुओं के अनुरूप आत्म मान्यता का त्याग कर आत्मानुरूप आत्मस्थिति का नाम है 'मुक्ति'। सदा के लिये मृत्यु, जड़ता, दुःख पर विजय प्राप्त कर सच्चिदानन्दरूप होकर ही शेष रहने का नाम है 'मुक्ति'**। ये पुरुषार्थचतुष्टय को हमने परिभाषित किया।

पृथ्वी का नाम हमने इसलिये लिया क्योंकि कृषि विज्ञान पर चर्चा कर रहे थे महानुभाव। पृथ्वी में नमी क्या है? जल का अंश है या नहीं? उसमें अगर ऊष्मा न हो तो बीज इत्यादि अंकुरित कैसे हों?

उसमें तेज सन्निहित है या नहीं? और जीवनी शक्ति जो पृथ्वी में है जिसके फलस्वरूप अन्न के सेवनसे हमको जीवनी शक्ति प्राप्त होती है, वो वायु का है या नहीं? और पृथ्वी बिल्कुल घनीभूत ही हो, उसमें अवकाश न हो तो अन्न इत्यादि का उत्पादन कैसे हो? कहने को तो पृथ्वी है लेकिन उसको साधे हुए जल भी है, तेज भी है, वायु भी है, आकाश भी है। अनुकूल आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी इसका ज्ञान होना चाहिए। पृथ्वी का नाम है 'वसुंधरा'। वसु माने धन। कोई भी भूमि ऐसी नहीं जो वसुंधरा न हो। अब वह मरुस्थल ले लीजिए, वहाँ पर पेट्रोल-डीजल ... अर्थ है या नहीं भरपूर? अच्छा ! कहीं सोने की खान है, कहीं लोहे की प्राप्ति होती है, कहीं कोयले की प्राप्ति हो जाती है, कहीं विविध प्रकार के अनाज की उत्पत्ति होती है और कहीं केसर की उत्पत्ति भी हो जाती। इसका मतलब क्या है वसुंधरा वसुंधरा ही है। पृथ्वी कहीं भी अपनी उपयोगिता को कुण्ठित कर दे यह सम्भव नहीं। अर्थशास्त्री वह होता है - किस भूमि से किस प्रकार की वस्तु की प्राप्ति हो सकती है, इसका उसको विधिवत् परिज्ञान हो।

सुब्रह्मण्यम स्वामी जी आदि खेती की बात कर रहे थे, मुझे बहुत प्रसन्नता हुई, मैं एक संकेत करना चाहता हूँ - **यह विकास की कैसी परिभाषा है जी कि एक प्रांत को शासनतंत्र तीन प्रांत बना देता है? जनता भी लोटपोट हो जाती है कि अब नया प्रांत बन गया, मैं नये प्रांत का नागरिक हो गया। मार किस पर पड़ती है? भूमि पर**

पड़ती है या नहीं? एक प्रांत के जब आप तीन प्रांत बना देंगे तो राज्यपाल भी तीन, मुख्यमंत्री भी तीन और फिर क्या क्या... कलेक्टर के लिये ये सब... एक जिला के तीन जिला बना देंगे... इधर ध्यान नहीं गया? यह विकास है या विनाश का मार्ग है? अंग्रेजों को कितना भी कोस लीजिये लेकिन कम-से-कम आज का बङ्गाल, बिहार और ओडिशा एक प्रांत उन्होंने रखा था या नहीं? **जब आप एक देश के तीन देश कर देते हैं, एक प्रांत के तीन प्रांत कर देते हैं और एक जिला के तीन जिला बना देते हैं तो ध्यान है कि मार किस पर पड़ती है, चोट किस पर पड़ती है? भूमि पर पड़ती है या नहीं?** और जो विकास को वर्तमान ढंग से परिभाषित किया गया है उसमें पृथ्वी धीरे-धीरे उत्पादिनी / उर्वरा शक्ति से विहीन होती जा रही है या नहीं? अन्न के उत्पादन की विधा भी एक प्रकार से कैंसर आदि रोग के लिये उर्वर है या नहीं? अन्न के संरक्षण की विधा भी। गैस के माध्यम से भोजन बनाएंगे और गाय के गोबर के कंडे से भोजन बनाएंगे तो आकाश-पाताल का अंतर होगा या नहीं? तो हमने एक संकेत किया सज्जनों कि अर्थ को अच्छी प्रकार से समझने की आवश्यकता है।

अब तक के प्रवचन का सार हुआ - **प्रयोजन का नाम है अर्थ, प्रयोजन की सिद्धि जिससे हो जाय उसका नाम भी अर्थ है। प्रयोजन और उसके साधन दोनों का नाम अर्थ है।** लेकिन प्रयोजन

को समझने की आवश्यकता है। जीव के जीवन में जो निसर्ग सिद्ध प्रयोजन है वह है मृत्यु, जड़ता, दुःख पर विजय प्राप्त करना। अर्थात् मृत्यु, जड़ता, दुःख से विविक्त सच्चिदानन्दस्वरूप होकर ही शेष रहना। और एक विचित्र तथ्य मैं कहता हूँ - अर्थ की अंतिम परिभाषा क्या होगी? गौड़पादाचार्य महाभाग ने माण्डूक्यकारिका में एक वचन बनाया **'उपाय सोवताराय'...** यह जो सृष्टि है यह व्यर्थ नहीं है। अगर महाप्रलय की दशा में हम, आप होते... ध्यान दीजिये - गाढ़ी नींद में ही हम, आप हमेशा रहें तो, गाढ़ी नींद में अर्थ की सिद्धि नहीं हो सकती, धर्म की सिद्धि नहीं हो सकती, काम की सिद्धि नहीं हो सकती, मोक्ष की सिद्धि नहीं हो सकती लेकिन किसी दुःख की प्राप्ति भी नहीं हो सकती। सदा के लिये गाढ़ी नींद ही हमको प्राप्त हो, वहाँ किसी द्वंद्व की, शीत-ऊष्ण आदि द्वन्द्व की पहुँच नहीं है। यह वरदान है गाढ़ी नींद, विक्षिप्त होने से बचाने वाली है गाढ़ी नींद। काम-क्रोध आदि मनोविकार की पहुँच नहीं है, 'मियां की दौड़ मस्जिद तक', जितने द्वंद्व हैं, ताप हैं उनकी पहुँच कहाँ तक? अहंकार तक। **ऽहमि च प्रसुप्ते...** (श्रीमद्भागवत एकादश स्कंध)। अहम् का सो जाना ही.... एक विचित्र बात है, अहंकार के नीचे जिनका जीवन है, अहंकार पर आरूढ़ होकर जो जीवन यापन करते हैं उनकी बात छोड़ दीजिए, गाढ़ी नींद में जो हमको सुख प्राप्त होता है, आनंद प्राप्त होता है वह अहंकार से ऊपर। गाढ़ी नींद में हम भोक्ता तो होते हैं लेकिन अहंग्रह पूर्वक भोक्ता नहीं होते। 'अहम्

सुखी' इस प्रकार का भाव नहीं उत्पन्न होता। तो हमने एक संकेत किया - सदा के लिये हमको गाढ़ी नींद प्राप्त हो जाय तो दुःख की पहुँच न होने पर भी कृतार्थता न हो। मृत्यु, जड़ता, दुःख के बीज अज्ञान का दाह न हो। महाप्रलय की दशा में हम लोग रहते मान लीजिये, भगवान् सृष्टि ही न बनाते तो न रहे बाँस न बने बाँसुरी, न बने बाँसुरी न बजे बाँसुरी। तो हमको यह सब पापड़ क्यों बेलने पड़ते? मान-अपमान, सुख-दुःख यह सब; संयोग, वियोग... लेकिन भगवान् ने जो सृष्टि बनाई है उसका प्रयोजन है **'उपाय सोवताराय'** (माण्डूक्यकारिका)। ब्रह्मतत्त्व/ परमात्मतत्त्व/ भगवत्तत्त्व में हमारा मन सन्निहित हो सके। तदनुकूल देह, इन्द्रिय, प्राण, अन्तःकरण में बल और वेग हम समर्जित कर सकें, **इसलिये जगत् मिथ्या कह देने से ही काम नहीं चलेगा, दार्शनिक दृष्टि से मिथ्या है, लेकिन इसकी उपयोगिता क्या है? इसीका आलम्बन लेकर सत्, चित् , आनन्द स्वरूप परमात्मा तक हम पहुँच सकते हैं।**

पञ्चदशी की एकबात कहकर मैं प्रवचन को विराम देता हूँ - सावधान! उर्दू में अगर मैं कहूँ तो *खालिस* जिसको pure कहते हैं, **विशुद्ध** कहते हैं संस्कृत में, अंग्रेजी में प्योर कहते हैं। सत् का किसी को ज्ञान हो सकता है? सत् का दर्शन हो सकता है? असत् का अनुभव हो सकता है? सत् का अनुभव कोई सत् ही करेगा या असत् करेगा? चित् का किसी को अनुभव हो सकता है? आनन्द का किसी

को अनुभव हो सकता है? सच्चिदानन्दस्वरुप जब हम भगवान् को कहते हैं तो भगवान् अनुभव स्वरूप हैं, अनुभाव्य नहीं। अनुभव के विषय भगवान् नहीं हैं। सच्चिदानन्दस्वरूप हो गये। बहुत अच्छा उदाहरण दिया पञ्चदशीकार विद्यारण्य स्वामी जी ने... अरहर की दाल बनाइये, करेले आदि की सब्जी बनाइये, उसमें इमली का प्रयोग करते हैं, खटास का प्रयोग करते हैं, अम्ल का प्रयोग करते हैं लेकिन अम्ल को खट्टा करने के लिये कोई और तत्व की जरूरत है क्या? जो अनुभवस्वरूप है वह अनुभव का विषय नहीं हो सकता।

अब एक कल्पना कीजिये - *रहा भी ना जाय सहा भी ना जाय* , मैं एक चुटकुला सुनाता हूँ.. मैं वृंदावन में वेद विद्यालय में पूज्य स्वामी श्री अखण्डानन्द सरस्वती जी महाभाग के यहाँ रहता था। सुबह छत पर घूमता भी जाता था और कुछ दर्शन, विज्ञान आदि का चिंतन भी करता था। नीचे एक ब्रह्मचारी जी थे, दर्पण सामने रखे हुए थे, नरवर से व्याकरणाचार्य होकर आए थे। उनके मन की बात वो जानें लेकिन वो एक गीत गा रहे थे- 'रहा भी ना जाय सहा भी ना जाय ... 'रहा भी ना जाय सहा भी ना जाय... वो ब्रह्मचारीजी के मन में क्या बात थी वो जानें ... हमारी आपकी स्थिति क्या है - 'रहा भी ना जाय सहा भी ना जाय '। क्या अर्थ है? भगवान् सच्चिदानन्दस्वरुप हैं, यह हमने सुन लिया लेकिन देखे बिना रह नहीं

सकते। और अगर वे दिखाई पड़ जायेंगे तो भगवान् नहीं रहेंगे, दृश्य हो जायेंगे, जो दृश्य होगा वह नश्वर होगा। जैसे अपना मुख है - कम-से-कम अपनी आँख के अभिव्यञ्जक संस्थान ये गोलक हैं, उसको देखे बिना कैसे रहा जायेगा? और देख कैसे सकते हैं? विचित्र बात है। दर्पण की क्या आवश्यकता है? जो स्वतः दृश्य नहीं है उसको भी प्रतिफलन सिद्धान्त (image system फिजिक्स में बहुत चलता है)... के द्वारा दृश्य बना दे। जगत् की क्या उपयोगिता है? साक्षात् सच्चिदानन्द तत्व किसी के दृश्य नहीं हो सकते, सर्वाधिष्ठान हैं वे लेकिन जगत् क्या करता है? जगत् की उपयोगिता क्या है? उनका अभिव्यञ्जक संस्थान है। **सन् घटः सन् पटः सन् त्यापस्तिभूः सन् वायुः...** हर वस्तु के माध्यमसे हम सत् का दर्शन कर लेते हैं। जो बहिर्मुख व्यक्ति होते हैं, वे घट-पट पर ध्यान रखते हैं, स्त्री-पुरुष पर.. और हमलोग... एक घट ने किसको व्यक्त किया? **सन् घटः** - घट है। 'है' कौन है? वह ब्रह्मतत्व जो सद्रूप है, उसको प्रकट कर दिया। घट पट आदि ने भी। अमुक भांति.. अमुक का भान हो रहा है। भान क्या है? परमात्मा ही तो है। यह जगत् भगवान् ने क्यों बनाया? जो भगवत्तत्व सच्चिदानन्दस्वरूप है, वह स्वरूपवैभव के आधारपर हमारा दृश्य नहीं हो सकता उसका अभिव्यञ्जक संस्थान जगत् है।

तो आज के प्रवचन का सार यह हुआ- पृथ्वी अर्थ है और पृथ्वी से वन आदि ये जो भी प्राप्त हुआ है वह सब अर्थ है, जल अर्थ है, तेज अर्थ है, वायु अर्थ है, आकाश अर्थ है। इन सबका उद्गम स्थान अव्यक्त / प्रकृति या माया अर्थ है। उनके आश्रय भगवान् अर्थ हैं। परम अर्थ परमात्मा की जो भी अभिव्यक्ति है उसका नाम अर्थ है। और अंत में परम अर्थ परमात्मा की प्राप्ति में जिसका साक्षात् या परम्परासे उपयोग हो, उसका नाम अर्थ है। अंत में अर्थ किसको कहते हैं? जो मृत्यु, जड़ता, दुःख के चपेट से मुक्त कर देने में समर्थ हो उसका नाम अर्थ है।

नारायण

हर हर महादेव

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीगणेशाय नमः

अर्थ सङ्गोष्ठी (जुलाई २०२०)

(दिवस २)

महानुभावोंने समय की सीमा में अर्थशास्त्र से सम्बद्ध अपने भावों को व्यक्त किया। मैंने कल कहा था कि श्रीसूक्त आदि के अनुसार पृथ्वी अर्थ है, जल अर्थ है, तेज अर्थ है, वायु अर्थ है, आकाश अर्थ है, अव्यक्त अर्थ है और परम अर्थ परमात्मा तो परम अर्थ हैं ही। परम अर्थ परमात्माकी जो भी अभिव्यक्ति है वैदिक वाङ्मय के अनुसार उसी का नाम अर्थ है। आधुनिक जगत् में भी अर्थ के जितने स्रोत बताए जा सकते हैं वे पृथ्वी, पानी, प्रकाश, पवन, आकाश पर ही निर्भर करते हैं। इन पञ्चभूतोंकी अभिव्यक्ति प्रकृति या अव्यक्त से हुई है। समस्त अर्थ का स्रोत प्रकृति ही मान्य है। प्रकृति भगवान् की शक्ति है। अतः **सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वर परम अर्थ के रूपमें वैदिक वाङ्मय में उद्भासित किये गये हैं। परम अर्थ परमात्माकी प्राप्तिमें साक्षात् अथवा परम्परासे जिसका उपयोग हो उसे अर्थ कहते हैं,** कल के प्रवचनमें हमने विस्तारपूर्वक इस तथ्य को उद्भासित किया। कल यह भी कहा गया था कि **अर्थ** का एक अर्थ होता है **प्रयोजन**। ऐसी स्थितिमें **प्रयोजन और उसकी पूर्तिके साधन का नाम अर्थ है। उपभोग की सामग्री का नाम अर्थ है।** इस

संदर्भ में कल यह भाव व्यक्त किया गया कि कोई भी उपभोग की सामग्री होती है उसी का नाम अन्न हो जाता है। अन्न का बृहद् विवेचन श्रीमद्भागवत के चतुर्थ स्कंध में राजर्षि पृथु जी के चरित्र के माध्यमसे व्यक्त किया गया है। पुष्टि और प्रमोद में जिसका उपयोग और विनियोग हो उसीका नाम सज्जनों अन्न है। कल यह भी हमने संकेत किया था कि **भोग्य सामग्री का नाम अर्थ है। भोग्य सामग्री के सेवन से जो देह, इन्द्रिय, प्राण, अन्तःकरण में बल का संचार होता है, जीवनमें पुष्टि की अभिव्यक्ति होती है और अंत में प्रमोद होता है उसीका नाम काम है।** भोग की सामग्री का नाम अर्थ है, यह अर्थ की बृहद् मीमांसा है। मैं एक संकेत करना चाहता हूँ - महानुभावोंने अर्थ के सम्बन्ध में अपने-अपने भावों को व्यक्त किया। लेकिन कल यह भी मैंने कहा था कि पृथ्वी चरम कार्य है। जितने स्थावर-जङ्गम प्राणी हैं उनके शरीर मर्त्यलोक में पृथ्वीसे ही अभिव्यक्त होते हैं। पृथ्वी के कार्य तरु, लता, गुल्म इत्यादि भी पार्थिव ही गिने जाते हैं। जो भी कार्य होता है उसमें कारण की अनुगति होती ही है। पृथ्वी में पानी की प्रतिष्ठा है तभी नमी है। पृथ्वी में तेज की प्रतिष्ठा है तभी ऊष्मता है। बीज अगर अङ्कुर का रूप धारण करते हैं तो तेज की महिमा से। बीज में, वृक्ष आदि में जो जीवनी शक्ति है वह वायु के कारण है। इसी प्रकार से अगर पृथ्वी में पोलापन न हो तो किसी भी वस्तु की अभिव्यक्ति न हो। तो मैंने संकेत किया कि पृथ्वी चरम कार्य है। उसमें जल की अनुगति है,

तेज की अनुगति है, वायु की अनुगति है, आकाश की अनुगति है, प्रकृति की अनुगति है और परमात्मा की अनुगति है। इसलिये **अर्थशास्त्र की विशद परिभाषा यह है कि परमात्मा से लेकर पार्थिव प्रपञ्च पर्यंत सबका नाम अर्थ माना जाता है। और अर्थ की सिद्धि परमात्मा से होती है। परमात्मा की प्राप्ति के लिये ही जब अर्थ का उपयोग और विनियोग होता है तब अर्थ की सार्थकता मानी जाती है।** कल मैंने यह भी संकेत किया था कि **श्रीमद्भागवत के 11वें स्कंध के 23वें अध्याय में चोरी, जुआ, मद्य, स्पृहा, वैर, हिंसा आदि पन्द्रह अनर्थों का नाम लिया गया है। पन्द्रह अनर्थों के चपेट से कदाचित् कोई अर्थ को मुक्त कर सके तो अर्थ का नाम अर्थ होता है अन्यथा अनर्थ हो जाता है।** इसलिये सावधान रहनेकी आवश्यकता है कि पन्द्रह अनर्थों की उद्भावना अर्थ के नाम पर न हो। आज सम्भवतः कोई भी ऐसा प्रांत नहीं है जिसमें गुप्त या प्रकट द्यूत और मद्य को अर्थ का स्रोत ना माना जाता हो। ऐसी स्थिति में आधुनिक परिपेक्ष में अनर्थ के जितने आयाम हैं उन्हीं को अर्थ के रूप में उद्भासित किया जा रहा है। इसलिये आर्थिक विपन्नता स्वभाव से सिद्ध है। एक बहुत विचारणीय विषय यह है कि अर्थ के जितने स्रोत मैंने बताये - पृथ्वी, पानी, प्रकाश, पवन, आकाश, ये ऊर्जा के भी स्रोत हैं। आस्तिक नास्तिक वैदिक अवैदिक उभयसम्मत ये पञ्चभूत ऊर्जा के स्रोत माने जाते हैं लेकिन स्वतंत्र भारत में विकास को जिस तरह से परिभाषित और क्रियान्वित करने की विधा चल रही है उसके

चपेट में आकर पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश जो कि अर्थ के स्रोत माने गये, ऊर्जा के स्रोत माने गये इनको कुपित कर दिया गया है, विकृत कर दिया गया है, क्षुब्ध कर दिया गया है। महानगरों की संरचना को विकास का मापदंड माना गया है लेकिन मैं संकेत करना उचित समझता हूँ कि **महानगरों में शुद्ध पृथ्वी और गन्ध सुलभ नहीं है, महानगरों में शुद्ध जल और रस सुलभ नहीं है, महानगरों में शुद्ध तेज और शुद्ध रूप / प्रकाश सुलभ नहीं है, महानगरों में शुद्ध वायु सुलभ नहीं है, शुद्ध स्पर्श सुलभ नहीं है, महानगरों में प्रचुर आकाश सुलभ नहीं है, शुद्ध शब्द भी प्राप्त नहीं है, मधुर मुस्कान भी प्राप्त नहीं है, मनोभाव भी शुद्ध नहीं है** तो विकास के नाम पर हमने जो नगरों को ख्यापित करना आरम्भ किया, आज जो विभीषिका (कोरोना) विश्व में आ रही है, सबसे अधिक विभीषिका का ग्रास वही क्षेत्र बना है जो आधुनिक विधा से विकसित माना जाता है। अब तो सोचने के लिये बाध्य होना पड़ा कि आखिर हम अर्थ को किस ढंग से परिभाषित करें, विकास को किस ढंग से परिभाषित और क्रियान्वित करें।

सावधान! **मैंने कई बार यह भाव व्यक्त किया है कि प्रकृति के जो कार्य और परिकर पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश हैं, ये जिस विधा को स्वीकार करते हैं उसके अध्ययन की आवश्यकता है। उसका अध्ययन नहीं करेंगे, अनुशीलन नहीं करेंगे तो विकास के**

नाम पर जो भी गतिविधि होगी उसका पर्यवसान विस्फोट में होगा। आज शरीर सबके दूषित हो गये। हमारे वेदान्त प्रस्थान के अनुसार तो हमारा स्थूलशरीर ही नहीं बल्कि सूक्ष्मशरीर भी पाञ्चभौतिक है। जब हमारे शरीर के उपादान पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश ही विकृत कर दिये गये क्षुब्ध कर दिये गये, कुपित कर दिये गये तो जीवन कैसे सुखमय हो सकता है? इसलिये अर्थ को वैदिक विधा से परिभाषित करने की, क्रियान्वित करने की आवश्यकता है।

अभी महानुभावों ने आर्थिक विपन्नता और अनावश्यक विषमता पर अपने भावों को व्यक्त किया। मैं एक प्रश्न उपस्थापित करता हूँ उत्तर भी मैं स्वयं दूँगा, सावधान! धीरे से बोल रहा हूँ ताकि बात समझ में आ सके। **एक ऐसी व्यवस्था की कल्पना कीजिये जहाँ हर व्यक्ति की जीविका जन्म से सुलभ हो। यदि ऐसा बानक बनाने में हम समर्थ होते हैं तो क्या आर्थिक विपन्नता, अनावश्यक विषमता सम्भव है? नहीं।**

और एक ऐसी व्यवस्था, जो आजकल चल रही है, उसको ध्यान में रखिये, जहाँ हर व्यक्ति की जीविका जन्म से असुरक्षित है। वहाँ स्वभाव से ही आर्थिक विपन्नता और अनावश्यक विषमता भी सम्भव है। अतः स्वस्थ क्रान्ति की आवश्यकता है आर्थिक जगत् में। **हर व्यक्ति की जीविका अगर जन्म से सुरक्षित है तो आर्थिक विपन्नता, अनावश्यक विषमता का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। जहाँ**

हर व्यक्ति की जीविका जन्म से असुरक्षित है वहाँ आर्थिक विपन्नता और अनावश्यक विषमता भी स्वभाव सिद्ध है। ऐसी स्थिति में प्राचीन जो शास्त्रसम्मत परम्परा है उस पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है। श्रीमद्भागवत में एक *अंधपरम्परा* शब्द का प्रयोग आया है। **हम अंधपरम्परा के पक्षधर तो नहीं है लेकिन अंधअविश्वास भी नहीं होना चाहिये। जितने शास्त्रसम्मत सिद्धांत हैं वो इस रॅकिट, कम्प्यूटर, एटम और मोबाइल के युग में भी दार्शनिक, वैज्ञानिक, व्यवहारिक धरातल पर उनकी उपयोगिता को कोई कुण्ठित नहीं कर सकता, ऊँगली नहीं उठा सकता। अतः मर्त्यलोक की व्यवस्था को पुनः शास्त्रीय विधा से उद्भासित करने की आवश्यकता है।**

अर्थ के उपार्जन की विधा भी आजकल दूषित है, संरक्षण की विधा भी दूषित है, वितरण की विधा भी दूषित है, उपभोग की विधा भी दूषित है। ऐसी स्थिति में आमूलचूल परिवर्तन की आवश्यकता अवश्य है।

और एक विचित्र बात है... जनसंख्या की बात... तो **वर्णाश्रम व्यवस्था यदि शास्त्र सम्मत हो तो उसकी क्या चमत्कृति होगी? पहली चमत्कृति मैंने बताई कि वर्णाश्रम व्यवस्था अगर शास्त्रीय विधा से बनी रहती स्वतंत्र भारत में, छल, बल, डंके की चोट से**

विकास के नाम पर उसके उन्मूलन का प्रयास नहीं चलता तो हर व्यक्ति की जीविका जन्म से आरक्षित होने के कारण आर्थिक विपन्नता या अनावश्यक विषमता का मार्ग ही प्रशस्त नहीं होता। अब जनसंख्या की बात है... मोदी जी भी चिंतित हैं... चिकित्सक लोग तो गर्भपात और क्या-क्या के पक्षधर हो गये हैं लेकिन थोड़ा विचार कीजिये... जो ब्राह्मण होते थे परम्परा से उनके लिये विधान था कि वे चारों आश्रमों में अधिकृत हैं। गुरुकुल में ब्रह्मचर्य आश्रम में अधिकृत हैं, गृहस्थ आश्रम में अधिकृत हैं, वानप्रस्थ आश्रम में अधिकृत हैं, संन्यास आश्रम में अधिकृत हैं। अब थोड़ा विचार कीजिये - शास्त्रीय परम्परा से गुरुकुल की शिक्षा जिसको प्राप्त है, गुरुकुल का जीवन संयमपूर्ण होता ही है, सादगी से पूर्ण होता ही है, वहाँ भोग-राग की कोई सम्भावना नहीं है। गृहस्थाश्रम कि जो मर्यादा निर्धारित की गई है, जब ब्राह्मण चारों आश्रमों में अधिकृत हैं, कदाचित् एक ब्राह्मण की आयु 100 वर्ष होती है तो 25 वर्ष तक गृहस्थाश्रम में वह रह सकता है। और अष्टमी तिथि, रजस्वला इत्यादि इन सबका ध्यान रख करके, अवश्य ही ब्राह्मणों की संख्या जितनी समाज को चाहिए शिक्षाविदों की, न्यायविदों की उससे अधिक नहीं हो सकती। वानप्रस्थ आश्रम में भोग-राग का कोई प्रश्न ही नहीं, संन्यास आश्रम में भोग-राग का कोई प्रश्न ही नहीं। इससे बढ़िया जनसंख्याको सुव्यवस्थित रखनेकी क्या विधा हो सकती है?

अब क्षत्रियों के लिये कहा गया - आप संन्यास की ओर मत झांकिये। यदि आप संन्यासी हो जाएंगे, अर्जुन को भगवान् श्रीकृष्णने कहा तो रक्षा की व्यवस्था सन्तुलित नहीं रहेगी। तो ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम तक क्षत्रियों को सीमित रखा गया। तो क्षत्रियों की संख्या जितनी होनी चाहिए उससे अधिक स्वाभाविक रूप से हो ही नहीं सकती थी। गर्भपात या परिवार नियोजन... आसुरी प्रवृत्ति की आवश्यकता नहीं थी, संयम के बल पर ही क्षत्रियों की जितनी संख्या होनी चाहिए, योद्धाओं की, क्षात्र धर्म के निर्वाहक मनीषियों की, उससे अधिक संख्या हो ही नहीं सकती थी। तो राष्ट्र की रक्षा व्यवस्था भी सन्तुलित रहती थी, राष्ट्र की शिक्षा व्यवस्था भी सन्तुलित रहती थी। शिक्षा के सम्बन्ध में मैं कहना चाहता हूँ - नीति और अध्यात्म से विहीन देहात्मभावभावित शिक्षा पद्धति को क्रियान्वित करने से लाभ क्या है? सब हानि ही है। फिर से सुनिये - शिक्षा... शिक्षा... हम लोग कहते तो हैं लेकिन शिक्षा जो आजकल है देहात्मभावभावित है। **चेतनाविशिष्ट शरीर को आत्मा मानकर ही आजकल शिक्षा पद्धति क्रियान्वित है। हर व्यक्ति बाजार का सौदा बनाने के लिये ही शिक्षित किया जाता है। इस पर ध्यान दीजिये। आजकल की शिक्षा पद्धति का अर्थ क्या है- हर व्यक्ति को उसी ढंग से शिक्षित कीजिये कि वह बाजार का सौदा बन सके।** इसका अर्थ है कि मनुष्य को अगर बाजार का सौदा बना देंगे तो शिक्षा पद्धति कहाँ ले जायेगी?

महाभारत के शांति पर्व में भीष्म जी ने चेतावनी दी - ***राज्यं पण्यं न कारयेत्*** **- राजा का / शासक का दायित्व होता है कि (उपलक्षण है) राज्य को, व्यक्ति को, समाज को, वर्ग को, तन्त्र को, राष्ट्र को, विश्व को बाजार का सौदा न बनावे।** आज भारत को बाजार का सौदा बनाया जा रहा है, इसको आर्थिक दृष्टि से कहते हैं कि उन्नति का मार्ग प्रशस्त हो रहा है। कुएँ में भांग पड़ी। आज व्यक्ति जो शिक्षित किया जाता है, विद्यालय में भेजा जाता है बाजार का सौदा बनने के लिये। जहाँ भारत स्वयं अपनेआप में बाजार का सौदा बनाया जा रहा है, भारत के हर व्यक्ति को बाजार का सौदा बनाने के लिये शिक्षित किया जा रहा है, वह शिक्षा पद्धति क्या होगी? **देहात्मभावभावित शिक्षा पद्धति कभी भी विकास के मार्ग में चार चाँद लगाने वाली सिद्ध हो, सम्भव नहीं।**

कल मैंने प्रवचन में एक भाव व्यक्त किया था, वह गम्भीर भाव है, अभी जो नये श्रोता हैं, वक्ता हैं, वे ध्यानपूर्वक सुनें, सावधान! **छान्दोग्य श्रुति के सातवें अध्याय के भाष्य में भगवान् शङ्कराचार्य महाभाग ने एक अद्भुत तथ्य ख्यापित किया है। जितने भौतिकवादी होते हैं वे विषयलम्पट होते हैं, देहात्मवादी होते हैं, इन्द्रियतादात्म्यापन्न होते हैं। इन्द्रियों की गति केवल वर्तमान तक होती है, भूत और भविष्य में इन्द्रियों की गति नहीं है। अतीन्द्रिय पदार्थ तक इन्द्रियों की पहुँच नहीं है। इसलिये भौतिकवादियों के**

द्वारा जो अर्थ को परिभाषित करने की विधा चल रही है, अर्थ को उपार्जित करने की विधा, वितरण की विधा, संरक्षण की विधा, उपभोग की विधा चल रही है, वह केवल इन्द्रियतादात्म्यापत्ति विषयलम्पटता के अंतर्गत है। इसलिये विकास के नाम पर विस्फोट स्वाभाविक है। आर्थिक विपन्नता का ग्रास विश्व बन जाये यह भी स्वाभाविक है। मैं एक संकेत करता हूँ सावधान होकर सुनिये। मनुस्मृति का एक उद्धरण देता हूँ - ***भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति*** - भूत, भविष्य और वर्तमान जो भी कालगर्भित पदार्थ हैं / तत्व हैं सबका यथावत् विज्ञान वेदों के द्वारा होता है। वेदों का बीज प्रणव या ओङ्कार है। जैसे वटबीज की महिमा वटवृक्ष की महिमा सिद्ध होती ही है इसी प्रकार माण्डूक्य उपनिषद् ने कहा- ***यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव*** ॥ कालगर्भित ही नहीं बल्कि कालातीत जो अव्याकृत परमात्मतत्व इत्यादि पदार्थ हैं, उनका अधिगम भी वेदों के द्वारा होता है।

तो मैंने संकेत किया - वेद और वैदिक वाङ्मय की उपयोगिता क्या है और क्यों है? **कालगर्भित और कालातीत जितने तत्व हैं, सबका अधिगम वेदों के द्वारा होता है।** और तैत्तिरीय उपनिषद् का मैं उद्धरण दे रहा हूँ - **तैत्तिरीय उपनिषद् में वेदों की प्रतिष्ठा मनोमय कोष में मानी गयी है। हमारा-आपका जो मन है उसमें निसर्गसिद्ध वेदों की प्रतिष्ठा है।** क्योंकि एक नियम है - लक्षण साम्य से वस्तु

साम्य। क्योंकि वेद कालगर्भित और कालातीत सब प्रकार के तत्वों को, पदार्थों को उद्भासित करते हैं। वेदों के माध्यम से हमको कालगर्भित और कालातीत सब प्रकार के तत्वों का ज्ञान हो सकता है। मन में वेद की प्रतिष्ठा क्यों है? मन की गति वर्तमान में भी है, भविष्य में भी है, भूत में भी है, कालातीत जो परमात्मा और प्रकृति है, उसमें भी मनोयोग सम्भव है। ऐसी स्थिति में मन जीवात्मा का दिव्यचक्षु है। यह कथन छांदोग्य श्रुति के आठवें अध्याय का है। इसका अर्थ है कि हमारे जीवन में उत्तम प्रज्ञा शक्ति का संचार तब तक हो ही नहीं सकता जबतक हम देहात्मभाव से भावित हैं। मैं एक संकेत करना चाहता हूँ - कम्युनिज्म की धारा में, समाजवाद की धारा में जो बहने वाले हैं उनकी क्या दयनीय स्थिति है? आज चीन भी चाहता है कि विश्व पर उसी का शासन हो, भारत को तो निगल ही लूँ। लेकिन कम्युनिज्म है क्या बला, इस पर विचार करने की आवश्यकता है। दार्शनिक और वैज्ञानिक धरातल पर..... थोड़ा विचार कीजिये... मैंने गुरु पूर्णिमा के अवसर पर एक भाव व्यक्त किया था जो सिद्धांत / वाद / तंत्र 24 घण्टे भी टिक न सके, गाढ़ी नींद का वेग ही जिसपर पानी फेर दे, उसको अपनाने से उत्कर्ष नहीं हो सकता, अपकर्ष ही हो सकता है।

सावधान होकर सुनिये! मैं कोई लोभ, भय, कोरी भावुकता, अविवेकपूर्वक नहीं बोलता। मेरा एक वाक्य भी गुरु, गोविन्द और ग्रन्थ की कृपा से लोभ, भय, कोरी भावुकता, और अविवेक के

वशीभूत नहीं होता। **कम्युनिज्म का सिद्धान्त क्या है,** इस पर थोड़ा विचार कीजिये। **चीन सावधान! मैं** बहुत लाड-प्यार से चीन को कहता हूँ और **कम्युनिज्म की** धारा में बहने वाले आर्थिक विपन्नता-विषमता को कम्युनिज्म की विधा से दूर करने के जितने पक्षधर हैं उनको डंके की चोट से लाड-प्यार से मैं संकेत करता हूँ। उस वाद को, तंत्र को, विचारधारा को लेकर हम क्या करेंगे? जिसकी गति गाढ़ी नींद में ही नहीं है। पञ्चदशी एक वेदान्त का ग्रंथ है, उसमें विचार किया गया आत्मा होने की योग्यता किसमें हो सकती है? अगर कोई वस्तु.. हमारे जीवन में कोई सामग्री है.. स्वप्न तक ही न पहुँच सके तो उसमें आत्मा होने की क्या क्षमता है? अगर गाढ़ी नींद तक ही उस वस्तु की पहुँच नहीं है तो अनित्य है। कहीं गाढ़ी नींद तक पहुँच भी है लेकिन वह दृश्य कोटि का पदार्थ है तो भी आत्मा होने की क्षमता नहीं है। **इसका अर्थ जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं में जिसकी गति हो और प्रकाश्य कोटि का न हो करके, भास्य कोटि का न हो करके, साक्षी कोटि का पदार्थ हो उसी में आत्मा होने की क्षमता है।** थोड़ा विचार कीजिये - 'चेतना विशिष्ट शरीर ही आत्मा है - कम्युनिज्म की धारा में समाजवाद की धारा में बहने वाले विचारकों का डंके की चोट से यह उद्घोष है।' अगर ऐसा ही है... क्योंकि बौद्धों ने हमारे एक सिद्धांत को अपने शब्दोंमें गुम्फित करते हुए कहा **'तत्त्वपक्षपातो हि स्वभावो धीयाम्'**। बुद्धि और जीवात्मा का स्वभाव है सत्य का, तथ्य का, तत्व का पक्षधर होना।

कोई कितना भी झूठ बोल ले लेकिन वह स्वयं जो जीव है, उसकी बुद्धि है, उसको नकारने में बिल्कुल समर्थ है। अपनी दृष्टि में जो गिर पड़ता है, वह विश्व की दृष्टि में तो कालांतर में गिर ही पड़ता है। तो हमने संकेत किया - **'तत्त्वपक्षपातो हि स्वभावो धीयाम्'**। बुद्धि का और जीव का स्वभाव होता है तथ्य का, तत्व का पक्षधर होना। थोड़ा विचार कीजिये - **अगर चेतनाविशिष्ट शरीर ही आत्मा है, जैसा कि कम्युनिज्म की धारा में बहने वाले साम्यवादी मानते हैं तो चेतनाविशिष्ट शरीर को भुलाकर हम सोना क्यों चाहते हैं? जब तक चेतनाविशिष्ट शरीर को हम भुलायेंगे नहीं तब तक तो गाढ़ी नींद की प्राप्ति नहीं होगी। और गाढ़ी नींद की प्राप्ति नहीं होगी और निर्विकल्प समाधि की क्षमता नहीं होगी तो दो-चार दिनों के बाद गाढ़ी नींद न आने के कारण पागल होने का मार्ग प्रशस्त हो जायेगा। तो गाढ़ी नींद में ही ज़ब चेतनाविशिष्ट शरीर की पहुँच नहीं है, इसलिये देहात्मभावभावित जो सिद्धांत है उस पर चलने से हमारा उत्कर्ष कैसे हो सकता है? संकेत में मैंने कम्युनिज्म पर पानी फेरा।**

और थोड़ा विचार कीजिये। **अभीष्ट विषय का इन्द्रियोंके माध्यमसे, अंतःकरण के माध्यमसे उपभोग होने पर जीवन में जो प्रमोद या आह्लाद की या आनन्द की अभिव्यक्ति होती है जिसको विषयानन्द कहते हैं, भौतिकवादी उसीके दीवाने होते हैं उसी पर लट्टू होते हैं उसीको आनन्द मानते हैं।** अगर विषयजन्य आनन्द ही

आनन्द है तो मैंने सम्भवतः परसों के प्रवचन में कहा था कि यदि विषयजन्य आनन्द ही आनन्द है तो जिसको विषयजन्य आनन्द भरपूर प्राप्त है, कम नहीं... प्रिय वस्तु अभीष्ट वस्तु के मिलने की संभावना हो या अभीष्ट वस्तु का दर्शन हो जाए या मिल जाये तब जो जीवन में आह्लाद की अभिव्यक्ति होती है उसका नाम है **'प्रिय'**। इच्छित वस्तु का सेवन करने पर जो आह्लाद की अभिव्यक्ति होती है उसका नाम है 'प्रिय' की अपेक्षा उन्नत आनन्द **'मोद'**। इच्छित वस्तुका यथेष्ट सम्पर्क/ संस्पर्श हो जाने पर, उपभोग हो जाने पर जो बाह्यभ्यंतर जो आनन्द की / आह्लाद की अभिव्यक्ति होती है उसका नाम है **'प्रमोद'**, ओवरफ्लोइंग की दशा जो हो जाती है.... **जिसको प्रिय ही नहीं, मोद ही नहीं अपितु प्रमोद प्राप्त है, विषयजन्य आनन्द भरपूर प्राप्त है उसे यदि गाढ़ी नींद प्राप्त न हो, विषयजन्य आनन्द को भी भुलाकर सोये नहीं तो विक्षिप्त या पागल हो सकता है या नहीं?** इसका मतलब विषयजन्य आनन्द को भुलाकर सोने की भावना प्रत्येक व्यक्ति के जीवनमें प्रतिदिन उद्भूत होती है। विषयजन्य आनन्द के जो पक्षधर हैं उनके सिद्धांत को अपनाने पर क्या होगा? पागल हम हो जायेंगे। अगर कोई कम्युनिज़्म की धारा में बहने वाला, समाजवाद की धारा में बहने वाला पागल नहीं है, विक्षिप्त नहीं है तो बुरा न मानो होली है, मन से आपको स्वीकार करना चाहिए कि अंदर से वह आस्तिक अवश्य है। बाहर से केवल कम्युनिज्म का अभिनय करता है क्योंकि भौतिकता का पर्यवसान

पागलपन में है। **देहात्मवाद का पर्यवसान पागलपन में है। विषयजन्य आनन्द का पक्षधर अगर कोई होगा तो उसको गाढ़ी नींद प्राप्त करने का उसकी सीमा में / उसके दर्शन की सीमा में / उसके विचारधारा की सीमा में सोने का अधिकार ही नहीं है। जब सोयेगा ही नहीं तो पागल हुए बिना, विक्षिप्त हुए बिना नहीं रहेगा।** जिसको निर्विकल्प समाधि प्राप्त नहीं होती और गाढ़ी नींद भी प्राप्त नहीं होती... निर्विकल्प समाधि का विकल्प है गाढ़ी नींद.... निर्विकल्प समाधि प्राप्त नहीं होती कदाचित् गाढ़ी नींद से भी वञ्चित है, विक्षिप्त हुए बिना नहीं रहेगा। पञ्चदशीकार विद्यारण्य स्वामी जी ने एक अद्भुत संदेश दिया... मैं एक संकेत कर दूँ तैत्तिरीय उपनिषद् के अनुसार अन्न की परिभाषा, अर्थ की परिभाषा सब तैत्तिरीय उपनिषद् आदि में पहले से विद्यमान है। कल मैंने अपने प्रवचन में विस्तारपूर्वक उसका उल्लेख किया था। ब्रह्माजी को तो आप मानते होंगे? **आज जो ब्रह्मा जी के पद पर हैं, कभी न कभी, बृहदारण्यक उपनिषद् के अनुसार मर्त्यलोक में बृहद् भारत में उत्तम कुल में उत्पन्न हुए थे। उन्होंने विधिवत् अश्वमेध याग का पालन किया।** अश्वमेध याग को सर्वोत्कृष्ट क्यों माना गया? अश्वमेध याग के देवता प्रजापति ब्रह्मा हैं। उस कर्म का अत्यंत महत्व हमारे शास्त्रों में है जिस कर्म के देवता जितने उत्कृष्ट हैं; देवताओं में प्रजापति ब्रह्मा सबसे उत्कृष्ट माने जाते हैं, अग्निहोत्र के देवता भी ब्रह्मा ही हैं, **किसी अन्य फल की आकांक्षा न रखकर ब्रह्मा जी को प्रमुदित करने की भावना से**

अपने जीवन काल में जिस व्यक्ति ने / मनुष्य ने बृहद् भारत में जन्म लेकरके निर्विघ्नतापूर्वक अश्वमेध याग का विधिवत् अनुपालन किया, देहत्याग के बाद आज उसको ब्रह्मा जी का पद प्राप्त है। मैं संकेत कर देना चाहता हूँ - बुरा न मानो होली है; जितने अर्थशास्त्री हैं भौतिकवादी उनको अर्थ के ¼ नहीं 2 प्रतिशत का ज्ञान अधिक-से-अधिक है। फिर से सुनिये - मैं बहुत लाड-प्यार चाव-भाव से कहता हूँ, **भौतिक विधा से जिनको अर्थशास्त्र का ज्ञान है अर्थ की परिभाषा उनको 2% से अधिक नहीं मालूम है। अर्थ के स्रोत का उनको परिज्ञान 2% से अधिक नहीं है। उदाहरण देकर कहता हूँ, कोरी भावुकता में नहीं कहता, अर्थ का अधिकांश स्रोत, 98% स्रोत उनकी दृष्टि से ओझल है। वेदादि शास्त्रसम्मत कर्मकांड, उपासना कांड, ज्ञान कांड को नहीं मानेंगे, भौतिक विधा से अर्थशास्त्र को परिभाषित या क्रियान्वित करेंगे तो अर्थ का 98% स्रोत तो आपकी दृष्टि का विषय ही नहीं हो सकता। इसलिये अर्थ के समग्र स्रोत का ज्ञान प्राप्त करना हो तो वेदादि शास्त्रसम्मत कर्मकांड, उपासना कांड, ज्ञान कांड में आस्थान्वित होना उचित है।** लेकिन वेदोक्त कर्मकांड का, उपासना कांड का, ज्ञान कांड का अनुपालन कौन कर सकता, इस पर विचार कीजिये। **देह के नाश से जीवात्मा का नाश नहीं होता देह के भेद से जीवात्मा में भेद की प्राप्ति नहीं होती, इस सिद्धांत में जिसकी आस्था है वही वेदोक्त कर्मकांड, उपासना कांड, ज्ञान कांड के मार्ग पर चल सकता है।** श्राद्ध में किसकी प्रीति-प्रवृत्ति

होगी? तर्पण में किसकी प्रीति-प्रवृत्ति होगी? ***इन्द्राय स्वाहा। इदं इन्द्राय न मम,*** इन्द्र के निमित्त आहुति देते हैं उसपर इन्द्र का अधिकार है न कि मेरा। तो यज्ञ-याग आदि में किसकी प्रीति प्रवृत्ति होगी? श्राद्ध में किसकी प्रवृत्ति होगी? तर्पण में किसकी प्रवृत्ति होगी? जिसके जीवन में इतना विज्ञान प्रतिष्ठित होगा परम्परा से या इतनी आस्था प्रतिष्ठित होगी कि देह के नाश से जीवात्मा का नाश नहीं होता देह के भेद से जीवात्मा में भेद की प्राप्ति नहीं होती। फिर से सुनिये देह के नाश से जीवात्मा का नाश नहीं होता देह के भेद से जीवात्मा में भेद की प्राप्ति नहीं होती, जिसको यह ज्ञान प्राप्त है या इस ज्ञान में / बोध में परम्परा प्राप्त जिसकी आस्था है वही वेदोक्त मार्ग पर कर्मकांड, उपासना कांड, ज्ञान कांड के मार्ग पर चल सकता है। **देहात्मभावभावित व्यक्ति अपनी कल्पना के द्वारा मनः कल्पित विधा से अगर विकास को परिभाषित और क्रियान्वित करता है तो नरक और नारकीय प्राणियोंका समुदाय ही जगत् हो सकता है।** कम-से-कम आजकल के जो शासक हैं, योजना आयोग के सदस्य हैं, आधुनिक विधा से अर्थ को परिभाषित और क्रियान्वित करने वाले जो महानुभाव हैंउनकी चमत्कृति के गर्भ से विभीषिका / महामारी निकली है या नहीं? इसका मतलब क्या हुआ? आँखें खोल देने के लिये महामारी भगवान् की ओर से आयी है। इसके रहस्य को समझने की आवश्यकता है। मैं फिर से बोल रहा हूँ - देहात्मभावभावित विधा से अर्थ को परिभाषित और क्रियान्वित

करने के प्रकल्प का यह परिणाम है - विस्फोट... विभीषिका...। इसका मतलब **वेदोक्त कर्मकांड, उपासना कांड, ज्ञान कांड की उपेक्षा करके मनःकल्पित विधा से विकास को परिभाषित और क्रियान्वित करने पर हम कम-से-कम मर्त्यलोक को नरक और नारकीय प्राणियों का समुदाय ही बना सकते हैं।**

मैंने क्या संकेत किया? ये जो विश्व में... भूलोक में हम आप रह रहे हैं, इसके ऊपर भुवः, फिर स्वः, फिर महः, फिर जनः, फिर तपः, फिर सत्यं.. तैत्तिरीय उपनिषद् के अनुसार बोल रहा हूँ उत्तरोत्तर उत्कृष्ट प्राणियों का निवासस्थान यह है। कोई गंधर्व है, कोई यक्ष है, कोई किन्नर है... ये आजकल का किन्नर नहीं, किन्नर शरीर बहुत उत्कृष्ट माना गया है। इसके बाद क्या है जी - कोई पितर शरीर में हैं, कोई देवता के शरीर में हैं, कोई देवराज इन्द्र के शरीर में हैं, कोई विराट.. बृहस्पति के शरीर में हैं, कोई ब्रह्मा जी के शरीर में हैं। तो ऊर्ध्वलोक जितने हैं उनमें जो प्राणी निवास करते हैं वे किस प्रयोगशाला के माध्यम से, किस विधा को अपनाने पर देहत्याग के बाद इन लोकों के प्राणी बन सकते हैं? कोई विधा नहीं है आधुनिक जगत् के पास। मैं संकेत करता हूँ - **अग्निहोत्रं जुहुयात स्वर्ग कामः..., 'स्वर्गकामो यजेत्'...** यह विधि है। जो अधिकृत व्यक्ति है वह अग्निहोत्र का विधिवत् अनुपालन करे तो देहत्याग के बाद स्वर्ग की प्राप्ति होगी। कोई कपोल कल्पना नहीं है, अगर आप

चँद्रलोक में पहुँचना चाहते हैं, मंगल पर पहुँचना चाहते हैं तो आपको मानना पड़ेगा कि परलोक है। यदि आपने इन ग्रह, नक्षत्रों को मान लिया है और आपकी वहाँ तक पहुँचने की भावना है तो वहाँ प्राणियों का जीवन होगा ही, इसका मतलब परलोक की मान्यता तो धीरे-धीरे वैज्ञानिक स्तर पर आ रही है। लेकिन मैं संकेत करना चाहता हूँ - स्वर्ग साधन है यह साध्य? अग्निहोत्र साधन है स्वर्ग साध्य है। किस लैबोरेट्री में / प्रयोगशाला में इसका ज्ञान होगा? वेदैकसमधिगम्य तथ्य है। मैंने विषय उठाया था 98% अर्थ का स्रोत तो भौतिकवादियों की दृष्टि का विषय ही नहीं हो सकता। आज भुवः में, स्वः में, महः में, जनः में, तपः में, सत्यं लोक में जो प्राणी हैं उत्तरोत्तर उत्कृष्ट दिव्यता से भरपूर हैं, समृद्धि से भरपूर हैं। उनकी उत्कृष्टता का, उनके देह, इन्द्रिय, प्राण, अन्तःकरण की दिव्यता का, उन्हें प्राप्त वैभव की दिव्यता का, प्रज्ञाशक्ति, प्राणशक्ति की उत्कृष्टता का कारण क्या है? वेदोक्त कर्मकांड, उपासना कांड, ज्ञान कांड। इसका मतलब भौतिकवादियों की दृष्टि से 98% अर्थ का स्रोत तो विलुप्त है। और 2% जो अर्थ का स्रोत प्राप्त है उसे भी भौतिक विधा से क्रियान्वित करने के कारण अर्थ को विषाक्त बना चुके हैं। पृथ्वी, पानी, प्रकाश, पवन ये सब ऊर्जा के स्रोत को हमने अत्यंत विषाक्त बना रखा है, उसी की विभीषिका यह इस समय रोग के रूप में है। तो मैंने एक संकेत किया कि अर्थ को पूर्णरूप से जानने के लिये

वैदिक वाङ्मय का अनुशीलन आवश्यक है। इसके बिना 98% अर्थ का स्रोत तिरोहित ही रहता है।

हम आर्थिक उत्कर्ष के अवश्य ही पक्षधर हैं लेकिन आवश्यकता यह है कि अर्थ के उद्गम स्थान को ठीक-ठीक समझें। पृथ्वी, जल, तेज, वायु को कुपित होने से, दूषित होनेसे बचाने का प्रयास करें। इसके लिये एक सूक्ष्म दृष्टि की आवश्यकता है। कल भी मैंने कहा था, कई दिनों से मैं कह रहा हूँ जबतक व्यक्तिके मस्तिष्क में यह तथ्य घुसेगा नहीं, प्रविष्ट नहीं होगा तब तक कहता रहूँगा... भूकम्प, सूर्यग्रहण, चँद्रग्रहण की प्राप्ति होती है तिथि के हिसाब से या तारीख के हिसाब से? तिथि के हिसाब से ना? यज्ञोपवीत, विवाह इत्यादि सफल कब होगा? तिथि के हिसाब से। यात्रा कब सफल होगी जब तिथि को मानेंगे। इसका अर्थ क्या हुआ? प्रकृति के जो परिकर कार्य हैं पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश ये जिस काल को, जिस विधा को स्वीकार करते हैं उसको समझ कर अर्थ को परिभाषित और क्रियान्वित करने का प्रकल्प चलाएँगे तो उत्कर्ष होगा नहीं तो अपकर्ष होगा। चँद्रग्रहण की प्राप्ति, ज्वार भाटे की प्राप्ति, सूर्यग्रहण की प्राप्ति जो होती है, भूकम्प की प्राप्ति होती है वह तारीख के हिसाब से नहीं तिथि के हिसाब से। Marriage तो कोई तारीख के हिसाब से कर सकता है लेकिन विवाह जो है तिथि के हिसाब से होने पर ही फलप्रद हो सकता है।

कोई धागा तो गले में कभी भी डाल सकता है लेकिन यज्ञोपवीत संस्कार तो तिथि के अनुसार ही.... अर्थात् पृथ्वी को क्या सह्य है, जल को क्या सह्य है, तेज को क्या सह्य है, वायु को क्या सह्य है, आकाश को क्या सह्य है? आजकल के अर्थशास्त्र में इसका ज्ञान है क्या? **जो पृथ्वी को सह्य नहीं है, जल को सह्य नहीं है, तेज को सह्य नहीं है, वायु को सह्य नहीं है, आकाश को सह्य नहीं है, नेचर या प्रकृति को सह्य नहीं है और परमात्मा को सह्य नहीं है उसको अगर हम उद्भासित करते हैं तो विनाश हुए बिना नहीं रह सकता। इस रॉकिट, कम्प्यूटर, एटम और मोबाइल का युग में भी सनातन वेदादि शास्त्र जो हैं उनकी उपयोगिता क्यों है? क्योंकि पृथ्वी को जो सह्य है, जल को जो सह्य है, तेज को जो सह्य है, वायु को जो सह्य है, आकाश को जो सह्य है, प्रकृति को जो सह्य है, परमात्मा को जो सह्य है उसी को उद्भासित किया गया है वेदादि शास्त्रों के माध्यम से। पृथ्वी, जल, तेज, वायु,आकाश का परिपूर्ण ज्ञान, प्रकृति का परिपूर्ण ज्ञान, परमात्मा का परिपूर्ण ज्ञान अध्यात्मशास्त्र का अनुशीलन किये बिना सम्भव नहीं है। अतः अर्थ को परिभाषित और क्रियान्वित करने का प्रकल्प भी वेदादि शास्त्रों के द्वारा ही सम्भव है।**

मैं क्षत्रिय तक पहुँच गया था, विषय मुझको याद है। रक्षाविद् **क्षत्रियों की संख्या जितनी चाहिए देश को उतनी ही हो, वर्णाश्रम**

व्यवस्था पर ध्यान दीजिए, क्षत्रियों से कहा गया आप संन्यास का दरवाजा मत खटखटाओ, आप भी कहीं बाबा बन जाओगे / संन्यासी बन जाओगे तो राष्ट्र की रक्षा व्यवस्था चरमरा जायेगी। बुरा न मानें जैन, बौद्ध सब मेरे बहुत लाडले प्यारे हैं, मेरे प्रति कोई मुस्लिम तंत्र का व्यक्ति, क्रिश्चियन तंत्र का व्यक्ति, कम्युनिस्ट तन्त्र का व्यक्ति कभी कुपित नहीं होता, सब मेरे प्रति आस्था रखते हैं क्योंकि सबके हित की भावना से भावित होकर मैं संकेत करता हूँ। लेकिन मेरे एक बहुत ही आस्थास्पद महावीर जी, जिनके नाम पर आजकल जैन संप्रदाय है और बुद्ध जी लाडले प्यारे नेपाल के क्षत्रिय कुल के थे। ये दोनों राजकुमार जब संन्यासी हो गये / बाबा हो गये तो क्षात्र धर्म का पतन हुआ या नहीं? भारत आदि की क्या दुर्दशा हो गई? अर्जुन भी क्षात्र धर्म का परित्याग करने जा रहे थे, अगर भगवान् श्रीकृष्ण जैसे मार्गदर्शक न मिलते तो प्रथम अशोक कौन होते? बुद्ध कौन होते? महावीर कौन होते? अर्जुन ही हो जाते। तो क्षत्रियों से कहा गया कि - ' कोई भी चुनौती दे दे.... माँ का दूध पिया हो तो सामने आ जा... **चाहे कल विवाह हुआ हो या कल विवाह होना हो, चिंता मत करो और समराङ्गण में जूझ पड़ो, धर्मयुद्ध में। अभिमन्यु का विवाह तो केवल 7 महीने पहले हुआ था। उनकी पत्नी ने रोका कि आपके पिता इत्यादि तो युद्ध भूमि में है ही आपको जाने की क्या आवश्यकता है? पत्नी ने रोका क्या? अगर अभिमन्यु रुक जाते घर में तो पत्नी कहती - कैसे क्षत्रिय हो? यह बहाना नहीं**

कर सकते कि मेरे पिता तो युद्ध भूमि में हैं तो मैं क्यों जाऊँ? इसका मतलब क्या है? क्षत्रिय हमेशा धर्मयुद्ध के लिये तैयार रहते थे तो क्षत्रियों की जितनी संख्या अपेक्षित थी उससे अधिक हो ही नहीं सकती थी।

और वैश्यों से कहा गया - आप वानप्रस्थाश्रम संन्यासाश्रम की ओर मत झांकिये। कहीं आप भी वानप्रस्थ हो जाएँगे, संन्यासी हो जाएँगे तो कृषि, गोरक्ष, वाणिज्य, शिल्प इत्यादि के प्रकल्प सन्तुलित नहीं रहेंगे। अर्थव्यवस्था को सन्तुलित रखने के लिये यह आवश्यक है कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्... कि आप वानप्रस्थ / संन्यास आश्रम से उपरत रहिये। इसका मतलब वैश्यों की जितनी संख्या होनी चाहिए कृषि, गोरक्ष्य, वाणिज्य, शिल्प इत्यादि प्रकल्पों को प्राप्त करने के लिये उतनी ही संख्या होती थी स्वाभाविक रूप से। न गर्भपात की आवश्यकता होती थी न परिवार नियोजन की आवश्यकता होती थी।

आगे बढिये.... **शूद्र बन्धुओं को कहा गया - सबसे गुरुतर दायित्व आपको प्राप्त है। क्या प्राप्त है? सेवा का, लघु उद्योग का, कुटीर उद्योग का। अगर आप गुरुकुल का दरवाजा खटखटाओगे, वानप्रस्थ हो जाओगे, संन्यासी हो जाओगे तो जितनी संख्या आपकी चाहिए वो न्यून हो जायेगी, सेवा का प्रकल्प भी तिरोहित**

हो जाएगा। कुटीर उद्योग, लघु उद्योग सारे प्रकल्प ध्वस्त हो जाएँगे। ऐसी स्थिति में कुटीर उद्योग, लघु उद्योग और सेवा के प्रकल्प सुरक्षित रहें, इसलिये आप केवल एक आश्रम तक सीमित रहिये। हो गया ना? जनसंख्या को, कृत्रिम विधा से नहीं स्वाभाविक रीति से सन्तुलित करने की कितनी सनातन धर्म में व्यवस्था है। शिक्षाविद् ,रक्षाविद् , अर्थविद् और सेवा के प्रकल्प को सञ्चालित करने वाले जितने होने चाहियें उससे अधिक हो ही नहीं सकते। इसलिये हमने कहा - *कितनी चिड़िया उड़े आकाश, चारा है धरती के पास* । पक्षी नभोमण्डल में ऊँचाई तक कितना भी उड़ान भर ले, जब उसे भूख का अनुभव होता है थकान का अनुभव होता है तो भूमि पर आने के लिये वह बाध्य होता है।

तो कम्युनिज्म को मैंने छुआ था... गाढ़ी नींद में... ब्रह्मा जी का नाम लिया न... सर्वोत्कृष्ट पद पर... जीव अगर सर्वोत्कृष्ट पद तक पहुँचे तो उसी का नाम ब्रह्मा है। कहीं वह ब्रह्म से अपने को एकीभूत कर ले तो सदा के लिये सच्चिदानन्दस्वरूप होकर ही शेष रह सकता है। लेकिन कर्मोपासना की सर्वोच्च गति ब्रह्माजी के पद की प्राप्ति है। तो **ब्रह्माजी की आयु कितनी है जी - 31 नील 10 खरब 40 अरब वर्ष। मर्त्यलोक की गणना के अनुसार ब्रह्मा जी की आयु है 31 नील 10 खरब 40 अरब वर्ष। क्या पेप्सी का सेवन करके और कॉफी का सेवन करके ब्रह्मा जी को इतनी आयु प्राप्त हुई है क्या?**

कोका कोला का सेवन करके ब्रह्मा जी को इतनी आयु प्राप्त हुई है क्या? एक जीव को 31 नील 10 खरब 40 अरब वर्ष की आयु प्राप्त कराने की क्षमता वेदोक्त कर्मकांड, उपासना कांड में है या नहीं? और सुन लीजिये, तैत्तिरीय उपनिषद् के अनुसार मैं बोल रहा हूँ - सप्तद्वीपा पृथ्वी (मेदिनी) पर एकछत्र सम्राट् कोई है, मर्त्यलोक का निष्कण्टक वैभव उसको प्राप्त है, पत्नी, परिकर सबके सब अनुकूल हैं काया की छाया के समान अनुगमन करते हैं, वी.पी. सिंह का शासन नहीं कि 200 ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य कुल के व्यक्तियों ने शरीर पर मिट्टी का तेल छिड़क कर के अपने को जला दिया। **ऐसा शासक जो सप्तद्वीपा मेदिनी का एकछत्र सम्राट है, युवा है, सुशील है, संयमी है तैत्तिरीय उपनिषद् के अनुसार उसको जो प्रतिक्षण जागृत अवस्था में व्यवहार दशा में आनन्द मिलता है उसकी अपेक्षा 1000 परार्ध गुण अधिक आनन्द ब्रह्मा जी को प्रतिक्षण व्यवहार दशा में मिलता है। 1 लिखने के बाद 17 शून्य लिखिए, उसका नाम होता है परार्ध। 1 लिखने के बाद 20 शून्य लिखिए, उसका नाम होता है सहस्र परार्ध। ब्रह्माजी कोई लुलु बुद्धू हैं? ब्रह्माजी की आयु है मर्त्यलोक की गणना के अनुसार 31 नील 10 खरब 40 अरब वर्ष। और ब्रह्माजी को व्यवहार दशा में प्रतिक्षण, एक सार्वभौम सम्राट् को सर्वाधिक आनन्द मर्त्यलोक का जितना मिल सकता है, जिसको मानसानन्द कहते हैं उसकी अपेक्षा 1000 परार्ध गुण अधिक आनन्द ब्रह्माजी को प्रतिक्षण मिलता है।** उस आनन्द की भी तिलाञ्जलि देकर,

भगवद्गीता के आठवें अध्याय का अध्ययन कीजिये, ब्रह्माजी भी सोते हैं। इसका कारण क्या है? कम्युनिज्म की पोल पट्टी खुल गयी या नहीं? अगर विषयजन्य आनन्द ही आनन्द है तो हम-आप किस खेत की मूली हैं? कम से कम ब्रह्माजी को गाढ़ी नींद नहीं चाहिये। **मर्त्यलोक में सर्वोत्कृष्ट आनन्द की अपेक्षा 1000 परार्ध गुण अधिक आनन्द व्यवहार दशा में जिन ब्रह्माजी को प्रतिक्षण प्राप्त है, वो ब्रह्माजी भी गाढ़ी नींद प्राप्त न करें, योग निद्रा प्राप्त न करें तो विक्षिप्त हो जायें। इसका मतलब भौतिकता की धारामें जो बहने वाले हैं, विषयजन्य आनन्द को ही आनन्द मानने वाले हैं, वे देहात्मवादी, उनके देहात्मवाद पर तो, उनकी इस मान्यता पर तो गाढ़ी नींद का वेग ही पानी फेर देता**। इसके पीछे दार्शनिकता क्या है? मैंने परसों कहा था - विषयजन्य आनन्द की व्यक्ति को प्राप्ति होती है तो त्रिपुटी होती है। इस वस्त्र के देखने से, छूने से या सूंघने से कल्पना कीजिये मुझे आनन्द की प्राप्ति हो रही है, इस वस्त्र का नाम हो गया भोग्य, मैं हो गया भोक्ता, आनन्द की अनुभूति का नाम हो गया भोग। जहाँ विषयजन्य आनन्द होता है वहाँ त्रिपुटी होती है जहाँ त्रिपुटी होती है वहाँ... त्रिपुटी का अर्थ है - तीन सामग्री। दो या दो से अधिक का नाम है द्वैत। जहाँ त्रिपुटी होती है वहाँ द्वैत होता है। जहाँ द्वैत होता है वहाँ श्रम होता है। जहाँ श्रम होता है वहाँ ख़ालिस, pure, निरतिशय आनन्द नहीं हो सकता। तुलसीदास जी ने विनय पत्रिका में लिखा - ***सपनेहुँ नहीं सुख द्वैत-दरसन, बात कोटिक को***

अर्थ सङ्गोष्ठी (जुलाई २०२०)

कहै। **इसका मतलब गाढ़ी नींद व्यक्ति को चाहिए और गाढ़ी नींद चाहिए तो कम्युनिज्म पर पानी फिर गया, विषयानन्दवाद पर पानी फिर गया। इसका मतलब दार्शनिक दृष्टि से तो कम्युनिज्म की धारा में बहना अत्यंत अज्ञता का सूचक है। क्योंकि देहात्मवाद पर तो गाढ़ी नींद का वेग ही पानी फेर देता है। और विषयजन्य आनन्द ही आनन्द है, इस सिद्धांत पर या वाद पर या तंत्र पर भी गाढ़ी नींद का वेग ही पानी फेर देता है।**

अब अर्थ की दृष्टि से विचार कर लें तो - मैंने बताया भौतिकवादियों की दृष्टि में तो अर्थ का बहुत सीमित स्वरूप ही सुलभ है। अन्न की परिभाषा भी हमारे आध्यात्मिक ग्रन्थों में जिस प्रकार दी गई है, आज तो उस अन्न की परिभाषा का भी विलोप हो गया। मैंने बताया - अर्थ का अर्थ क्या होता है जी? प्रयोजन की सिद्धि जिससे हो। प्रयोजन और प्रयोजन की सिद्धि में जो सामग्री हेतु है उसका नाम अर्थ है। अर्थ की पूरी परिभाषा यही है। प्रयोजन का नाम अर्थ है। किस अर्थ से आपका आगमन हुआ जी? अर्थ का मतलब प्रयोजन? और प्रयोजन की सिद्धि किस प्रकार हो सकती है.... प्रयोजन और प्रयोजन की सिद्धि की सामग्री का नाम अर्थ है। तो हमने संकेत किया कि हमारे कर्मकांड में, उपासना कांड में दिव्य विधा से अपार अर्थ को व्यक्त करने की जो क्षमता है वो तो भौतिकवादी कभी प्राप्त ही नहीं कर सकते। इसलिये मैंने संकेत

किया अर्थ का स्रोत तो भौतिकवादियों की दृष्टि में विलुप्त है। अन्न की विशेष परिभाषा - जो भी सामग्री है, अंत में जीव का भोग्य हो तब उसका नाम अर्थ होगा न? अर्थ का पर्यवसान अन्न है। फिर से सुनने की आवश्यकता है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, स्रक्, चन्दन, वनिता, व्यञ्जन आदि जो भी सामग्री है अंत में उसका नाम अर्थ हो जाता है। अर्थ मानें भोग्य पदार्थ। इसका मतलब अर्थ का अर्थ सीधे ही हो जाता है अन्न। अन्न का नाम अर्थ है। कहाँ से बोल रहा हूँ? श्रीमद्भागवत के चौथे स्कंध में जो पृथु जी का इतिहास उपाख्यान है वहाँ अन्न के प्रकार का वर्णन है। अन्न की परिभाषा देखिये धार्मिक आध्यात्मिक विधा से - पुष्टि और प्रमोद की सामग्री का नाम अन्न है। अर्थ की परिभाषा- पुष्टि और प्रमोद की सामग्री का नाम अर्थ है। अब अर्थ क्या है? नृत्य भी अर्थ है / अन्न है, गान भी अर्थ है। तो हमने क्या संकेत किया जी? गंधर्व इत्यादि... सिद्धि भी अर्थ है। पुष्टि और तृप्ति में, पुष्टि और प्रमोद में जिसका उपयोग और विनियोग हो उसका नाम अर्थ है। अर्थात् **अर्थ जो है अन्न हो करके ही हमारा भोग्य बनता है**। मैंने संकेत किया वेदादि शास्त्रों के अनुसार।

महायन्त्रों का प्रचुर आविष्कार और प्रयोग होगा तो श्रमिक जो हैं कम-से-कम श्रम कर सकेंगे, यह कम्युनिस्टों की मान्यता है। और हमारे मनु जी की मान्यता क्या है - **महायन्त्रप्रवर्तनम्।**

(मनुस्मृति 11.63) विश्व में स्वस्थ क्रान्ति के लिये आर्थिक जगत् में आवश्यक है मनुस्मृति के इस वचन पर ध्यान देना। **महायन्त्रप्रवर्तनम्** का अर्थ क्या है? **अगर विभीषिका उत्पन्न करनी हो, आर्थिक विपन्नता और विषमता उत्पन्न करनेकी भावना हो, विश्वयुद्ध उत्पन्न करनेकी भावना हो तो महायन्त्रोंका प्रचुर आविष्कार और प्रयोग कीजिये। बेरोज़गारी बढ़ानेकी भावना हो तो महायन्त्रोंका प्रचुर आविष्कार और प्रयोग कीजिये। महायन्त्रोंके गर्भ से ही विभीषिका निकली है या नहीं? हमने संकेत किया। इस समय जो (कोरोना) विभीषिका चल रही है उसने आँखें खोल देने का मार्ग प्रशस्त किया है।**

और पलायनवाद... **मनुस्मृति में कहा गया- प्रयास कीजिये, कल्पना कीजिये 1000 व्यक्तियों में 999 व्यक्तियों को अपने चतुर्दिक् क्षेत्र में ही जीविका सुलभ हो जाए।** अगर हम इस विधा को अपनाए होते तो... विदेशी लोग भारतीयों को खदेड़ रहे हैं, भारत में अन्य प्रांतों में रहने वाले व्यक्ति को उस प्रान्त के व्यक्ति खदेड़ रहे हैं। कल दूसरे जिला के व्यक्ति को अपने जिला में लोग रहने नहीं देंगे। पलायनवाद बहुत विचित्र है। पलायनवाद की प्रतिक्रिया देखिए.. To every action there is an equal and opposite reaction... (गुरुत्वाकर्षण का तीसरा सिद्धांत), प्रत्येक क्रिया की उसकी विपक्ष प्रतिक्रिया होती है।

तो हमने एक संकेत क्या किया - वन को छोड़ो गाँव की ओर जाओ.. गाँव को छोड़ो नगर की ओर जाओ.. नगर को छोड़ो महानगर की ओर जाओ... महानगर को छोड़ो फिर विदेश में पलायन कर जाओ, अब विदेश को छोड़ो देश में आओ, फिर महानगरों को छोड़ो उपनगर में आओ, उपनगरों को छोड़ो गाँव में जाओ, उल्टा हो गया या नहीं? क्या हो गया? हमने विकास को इस ढंग से परिभाषित किया कि इस रोग ने उल्टा कर दिया। *पुनर्मूषिको भव।*

इसका अर्थ क्या हुआ? यह सनातन विधा है। मनुस्मृति में कहा गया- **श्रमजीवी जो व्यक्ति हैं वे चाहें तो अन्य क्षेत्र में जाकर भी जीविका अर्जित कर सकते हैं। व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि जन्म से हर व्यक्ति की जीविका सुरक्षित हो, श्रमजीवियों की भी। और अंत में अपने क्षेत्र में ही उनको जीविका सुलभ हो जाय ताकि अनावश्यक पलायन की आवश्यकता न हो। संयुक्त परिवार न टूटे। शहरों में निवास करेंगे, संयुक्त परिवार की गति शहरों में नहीं होगी, महानगरों में। और संयुक्त परिवार टूट जायेगा तो कुलाचार, कुलधर्म इनकी गति नहीं होगी। कुलोचित आहार-विहार और विचार भी शेष नहीं रहेंगे। कुलवधू सुलभ नहीं होगी, कुलगुरु सुलभ नहीं होंगे, कुलदेवता सुलभ नहीं होंगे, कुलपुरुष सुलभ नहीं होंगे और ये सब सुलभ नहीं होंगे तो मनुष्य को भोजन करने और संतान उत्पन्न करने की मशीन बना दिया जायेगा। इसका नाम विकास हुआ या ह्रास?**

एक संकेत और करना चाहता हूँ **प्रज्ञा शक्ति, प्राण शक्ति के ह्रास का नाम आजकल विकास है। कृतयुग में प्रज्ञाशक्ति, प्राणशक्ति परिपुष्ट होती थी, सबसे अधिक होती थी, त्रेता में उससे कम, द्वापर में उससे कम, कलियुग में उससे कम। आगे कलियुग के अन्य चरणों में उससे भी कम। यह विकास की कैसी परिभाषा है कि प्रज्ञाशक्ति, प्राणशक्ति हमारी क्षीण होती जा रही है? हम कहते हैं हम विकसित हो रहे हैं। अरे प्रज्ञाशक्ति, प्राणशक्ति को क्षीण कर दोगे तो उसका नाम विकास होगा या ह्रास? इसलिये बहुत ही दृढ़ता पूर्वक, सहृदयतापूर्वक विकास को समझने की आवश्यकता है, अर्थ को समझने की आवश्यकता है।**

और अंत में जैसा मैंने कल कहा था वही वाक्य कहकर मैं वचन को विराम देता हूँ। बृहदारण्यक उपनिषद् का एकवचन ध्यान में रखिए, जीवन दिशाहीन नहीं होगा, जगत् भी दिशाहीन नहीं होगा -

असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मामृतं गमय... हे प्रभो! मेरे जीवन में उस बल और वेग का आधान कर दो जो कुछ भी अनित्य है, मृत्यु है उससे पिण्ड छुड़ाकर नित्य, अमृतस्वरूप होकर शेष रह सकूँ।

हे प्रभो! मेरे जीवन में उस बल और वेग का आधान कर दो जो कुछ अचित् है, जड़ है, अज्ञान है, मूर्खता है, नासमझी है उससे पिण्ड छुड़ाकर नित्य, चिद् रूप होकर अखण्ड विज्ञानसम्पन्न होकर शेष रह सकूँ।

हे प्रभो! मेरे जीवन में उस बल और वेग का आधान कर दो जो कुछ दुःख है, ताप है, वेदना है उससे विमुक्त होकर आनन्दस्वरूप होकर शेष रह सकूँ।

मृत्यु, मूर्खता या जड़ता, दुःख पर आत्यंतिक विजय कराने की आवश्यकता है। मृत्यु, जड़ता, दुःख पर आत्यंतिक विजय में जो सोपान प्रस्तुत कर सके उसका नाम अर्थ है।

नारायण नारायण नारायण

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीगणेशाय नमः

अर्थ सङ्गोष्ठी (जुलाई २०२०)

(दिवस ३)

मुझे अतीव प्रसन्नता है कि आप महानुभावोंने आस्था और अपनत्व का परिचय देकर हमें उत्साहित किया है। समय-समय पर इस प्रकारका प्रकल्प चलता रहे ऐसी मेरी भावना है। मैं संकेत करना उचित समझता हूँ - **अव्यक्तोपनिषद् में सांकेतिक शैली में तीन प्रकारकी क्रान्ति का वर्णन किया गया है। एक रक्त क्रान्ति, एक हरित क्रान्ति, एक श्वेत क्रान्ति। आजकल हरित क्रान्ति की चर्चा बहुत चल रही है परंतु अव्यक्तोपनिषद् में परमात्मा / ब्रह्म या भगवान् / ईश्वर को रक्त कहा गया। उनकी जो शक्ति है, प्रकृति, उसके लिये हरित शब्द का प्रयोग किया गया है और आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी के लिये श्वेत शब्द का प्रयोग अन्तर्निहित है। इस प्रकार तीन प्रकार की क्रान्तियों में जितनी भी क्रान्तियाँ हैं सबका समावेश हो जाता है। परमात्माके प्रति आस्था हो तो स्वस्थजीवन की प्राप्ति होती है, समृद्धता भी व्यक्तिको सुलभ होती है।** उनकी जो शक्ति प्रकृति है उसके स्वरूपको समझें तो हरित क्रान्ति सब प्रकारके उत्कर्षका मार्ग प्रशस्त होता है।

आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी जो ऊर्जा के स्रोत हैं उनके भी सदुपयोगकी क्षमता जीवनमें आती है। इस तथ्यको समझनेके लिये श्रीमद्भगवद्गीता के एक वचन का अनुशीलन आवश्यक है। भगवान श्रीकृष्णका कथन है -

मयाऽध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनाऽनेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते।। (गीता 9.10)

फिर 14वें अध्याय में भगवान का वचन है -
मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्

तो मैंने संकेत किया कि परमात्मा, प्रकृति और पञ्चभूत ये ही वस्तुतः अर्थ सिद्ध हैं। **अर्थ की जितनी भी परिभाषा की जाये, अर्थ के जितने स्रोतों का पता लगाया जाये, अर्थ के जितने प्रभेद का वर्णन किया जाये सबका अंतर्भाव पञ्चभूत, प्रकृति और परमात्मा ही सिद्ध है। तो रक्त क्रान्ति, हरित क्रान्ति, श्वेत क्रान्ति का उद्भव स्थान परमात्मा, प्रकृति और पञ्चभूत को मानना चाहिये।**

और मैं संकेत करता हूँ, अर्थ की परिभाषा पिछले दिनों कही गई। प्रयोजन और उसकी सिद्धि के साधन का नाम अर्थ है। अर्थ की सार्वभौम परिभाषा यही सिद्ध होती है। प्रयोजन और उसकी

सिद्धि के जो साधन हैं, दोनों को मिला दें तो अर्थ की परिभाषा अपनेआप में पूर्ण हो जाती है। यह भी मैंने पिछले दिनों सिद्ध किया कि भोग्य पदार्थ का नाम अर्थ होता है। और **भोग्य पदार्थ का नाम अर्थ होता है ऐसा कहने पर भोग्य पदार्थ की अपनेआप अन्न संज्ञा हो जाती है।** अन्न के बृहद् स्वरूप को समझने के लिये श्रीमद्भागवत में जो पृथु जी का चरित्र सन्निहित है उसका अनुशीलन आवश्यक है। **पुष्टि और प्रमोद जिसके सेवन से प्राप्त हों उसका नाम अन्न है, उसी का नाम अर्थ है।** अर्थ की मीमांसा यही सिद्ध होती है। अन्न किसको हम कहेंगे? जिससे पुष्टि अर्थात् देह, इन्द्रिय, प्राण, अंतःकरण का पोषण प्राप्त हो, अंत में प्रमोद, आह्लाद, आनन्द में जिसका पर्यवसान हो उसी का नाम अन्न है, उसी का नाम भोग्य पदार्थ है, उसी का नाम अर्थ है।

मैंने पिछले दिनों यह भी संकेत किया कि श्रीमद्भागवत के 11वें स्कंध के 23वें अध्याय के अठाहरवें-उन्नीसवें श्लोक में **अनर्थ के पन्द्रह प्रभेद हैं। अनर्थ के चपेट से कदाचित् कोई अर्थ को मुक्त कर सके तब अर्थ का नाम अर्थ होता है नहीं तो अर्थ के नाम पर अनर्थ ही पलता है।** फिर मैं स्थल बताता हूँ ताकि आप शान्त एकांत स्थान में उन पन्द्रह हेतुओं पर विचार कर सकें ताकि अर्थ को परिभाषित करते समय यह ध्यान रहे कि अर्थ का उपयोग और विनियोग कहीं अनर्थ में न हो जाये। उदाहरण के लिये मैं बताता हूँ

- चोरी, हिंसा, अनृत, दम्भ, काम, क्रोध, अभिमान, अपमान, भेद, वैर, अविश्वास, संस्पर्धा, मद्य और द्यूत ये सब 15 अनर्थ हैं। इनके चपेट से अर्थ को मुक्त करने पर सचमुच में अर्थ अर्थ सिद्ध होता है। एक और संकेत करना मैं उचित समझता हूँ, महाभारत में पुरुषार्थचतुष्टय का वर्णन है - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। एक-एक पुरुषार्थ के साथ एक-एक प्रतिबन्धक मल जुड़ा हुआ है। कदाचित् कोई उस मल से उस पुरुषार्थ को मुक्त कर सके तो वह पुरुषार्थ पुरुषार्थ सिद्ध होता है नहीं तो वह विस्फोटक सिद्ध हो जाता। इस संदर्भ में अर्थ का मल क्या है, इस पर भी विचार करने की आवश्यकता है। **अर्थ का मल है 'संग्रह'**। 'अर्थ' का मल 'संग्रह' महाभारत ने बताया। लोग समझते हैं कि अर्थ की उपलब्धि तब होगी जब हम प्रचुर संग्रह करेंगे। अर्थ का मल है संग्रह। **यथायोग्य वितरण की प्रणाली नहीं रहेगी भावना की प्रणाली नहीं रहेगी, दस पीढ़ी के लिये धन बटोरने की भावना रहेगी तो अर्थ अर्थ नहीं है वह मलयुक्त है, दूषित है। इसलिये अर्थ को अर्थ के रूप में उद्भासित करने के लिये महाभारत ने यह बताया कि संग्रह से अर्थ को मुक्त कीजिये तब अर्थ अर्थ सिद्ध होगा नहीं तो अर्थ अनर्थकारी सिद्ध हो जायेगा।**

इसी प्रकार आमोद-प्रमोद, शक्ति-विहीनता, विषय-लम्पटता इसको क्या कहा गया? काम का मल। **धर्माविरुद्धो भूतेषु**

कामोऽस्मि भरतर्षभ।। (भगवद्गीता 7.11) आज जो काम के नाम पर पिशाचवृत्ति चल रही है, इसका अर्थ है कि काम के शोधन की आवश्यकता है। आमोद-प्रमोद, विलास, विषयलम्पटता ये काम पुरुषार्थ में प्रतिबन्धक हैं। हमको काम को काम के रूप में उद्भासित करने के लिये काम को भी निर्मल बनाने की आवश्यकता है।

इसी प्रकार से 'फल-आशा' धर्म के मार्ग का मल है। धर्म को शोधित करने के लिये 'फल-आशा' का त्याग करना आवश्यक है।

और मोक्ष के मार्ग में 'द्वैताभिनिवेश' - ***भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्यात्*** (श्रीमद्भागवत एकादश स्कंध), ***द्वितीयाद्वै भयं भवति*** (बृहदारण्यक उपनिषद)। द्वैत में अभिनिवेश जो है यह मोक्ष के मार्ग में प्रतिबन्धक है, मल है। तो मैंने समय की सीमा में एक संकेत किया कि चारों पुरुषार्थों को सचमुच में पुरुषार्थ का रूप देने के लिये उनका शोधन आवश्यक है, मल निवृत्त करने की आवश्यकता है।

फिर से सुनिये - अर्थ के मार्ग में संग्रह मल है। कम्युनिज्म क्यों पलता है, मैंने आज विचार किया, पहले भी कई बार विचार किया था, बचपन में जब मैं दिल्ली में विद्यार्थी था गाया करता था *'शहीद तेरी मौत ही वतन की जिंदगी...'* दूसरे शब्दों में कहूँ **सनातन धर्मियों**

का, हमारा-आपका प्रमाद ही विश्व में जितने तंत्र हैं उनका जीवन है। यह वाक्य कुछ रहस्यात्मक है। फिर से सुनिये- हम न मुस्लिम तंत्र को, न कम्युनिस्ट तन्त्र को, न क्रिश्चियन तंत्र को, किसी तंत्र को कोसते नहीं हम। क्यों नहीं कोसते? हम इस बात को अच्छी प्रकार समझते हैं कि धर्म को, अध्यात्म को समझने में, उसके अनुपालन में जो त्रुटि हुई, उस त्रुटि के गर्भ से ही ये सब तंत्र उत्पन्न हुए हैं। जैसे *'शहीद तेरी मौत ही वतन की जिंदगी '* वैसे ही हम सनातन धर्मियों का जो प्रमाद है उसी ने समय-समय पर विभिन्न तंत्रों को उद्भासित किया है। मैं संकेत करता हूँ - मुस्लिम तंत्र की, क्रिश्चियन तंत्र की, कम्युनिस्ट तंत्र की उपयोगिता कब समझ में आई? ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अन्त्यज... जो भी महानुभाव हैं वर्णाश्रम से सम्बद्ध, उन्होंने अपने दायित्वको ठीक से समझा नहीं, उसके पालन में जब प्रमाद हुआ तब जाकर इन तंत्रों की उद्भावना हुई। कम्युनिज्म को लेकर विचार कीजिये, श्रीमद्भागवत के सप्तम स्कंध में देवर्षि नारद का एक वचन बहुत महत्वपूर्ण है - **यावत् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहीनाम्** - जिससे पेट भर जाये, तन ढक जाये, देव-पितृ कार्य का निर्वाह हो जाये, अतिथि सेवा हो जाये उससे अतिरिक्त धन पर जो अपना स्वामित्व मानता है वो स्तेन (चोर) है। कबीरदास बाबा के शब्दों में -

साईं इतना दीजिये जा मे कुटुंब समाय, मैं भी भूखा ना रहूँ साधु न भूखा जाये।

तो देवर्षि नारद ने क्रान्ति का बीज बोया या नहीं? अगर हम उस क्रान्ति के बीज को ठीक-ठीक शास्त्रसम्मत परम्परासे समझते तो कम्युनिज्म की कोई आवश्यकता नहीं होती।

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति।।

दण्डाधिकारी का यह दायित्व है कि जिससे तन ढक जाये, पेट भर जाये, देव कार्य, पितृ कार्यों का निर्वाह हो जाये, अतिथियों का स्वागत हो जाये, भरण-पोषण सादा जीवन की संरचना हो जाये उससे अधिक सम्पत्ति पर अगर कोई अपना अधिकार समझता है तो वह चोर है। दण्डाधिकारी का कर्तव्य है कि उसे दण्ड दे। अब दण्ड का प्रकार क्या है? महाभारत उद्योगपर्व में धृतराष्ट्र के सम्मुख विदुर जी ने एक भाव व्यक्त किया है। बहुत ध्यान पूर्वक सुनना चाहिये, विशेषकर **कम्युनिज्म जो हमारे देश में पनपा या चीन आदि में पनपा वह हमारे प्रमाद का फल है। इसलिये हम किसी कम्युनिस्ट को दोष नहीं देते, क्रिश्चियन तंत्र को दोष नहीं देते, मुस्लिम तंत्र को दोष नहीं देते। धर्म और अध्यात्म को समझने में उसके अनुपालन में जो प्रमाद है, उसी का ही विस्फोटक परिणाम है, और कोई नहीं। आज अगर उस प्रमाद का निवारण हो जाये तो विश्व में कोई तंत्र शेष नहीं रहेगा। अपनेआप लाठी, गोली के बिना ही सभी तंत्र हमारे तंत्र में जाकर खप जायेंगे समा जायेंगे, जैसे समुद्र में गङ्गा, यमुना इन सब जलधाराओं का अपने आप द्रुतगति से विलय हो जाता है।**

इसी प्रकार किसी तंत्र को कोसने की आवश्यकता नहीं है। प्रमाणिक रीति से आत्मनिरीक्षण करने पर धर्म, अध्यात्म को समझने, उसके अनुपालन में जो प्रमाद हुआ है उसी का यह सब विस्फोटक परिणाम है।

उदाहरण देता हूँ - नारद जी ने कहा है कि ***स स्तेन*** (वह चोर है)। भले ही किसी के पास करोड़ रुपए हों, अरबों की सम्पत्ति हो लेकिन उस पर अपना स्वामित्व मानता है, अपनी सम्पत्ति का जहाँ-जहाँ जितने अंशों में स्थावर-जङ्गम प्राणियों के पोषण में, देवताओं के पोषण में, पितरों के पोषण में उपयोग और विनियोग करना चाहिये, नहीं करता है तो वह स्तेन (चोर) है। मैं संकेत कर दूँ, बात तो कुछ कठिन है लेकिन कहने की आवश्यकता है - **चतुर्दश भुवनात्मक ब्रह्माण्ड में जितने प्राणी हैं सबके पोषण का दायित्व मर्त्यलोक के मनुष्योंका है, विशेषकर बृहद् भारत के मनुष्योंका है। पितरोंका पोषण कौन करेगा, देवताओंका पोषण कौन करेगा? पिण्डोदक क्रिया का विलोप हो जाने पर इन सबको दुर्बलता प्राप्त होगी या नहीं? एक मनुष्य का दायित्व कितना है, केवल पेट भर लेना परिवारका पोषण कर लेना नहीं, चतुर्दशभुवनात्मक ब्रह्माण्ड में जितने स्थावर-जङ्गम प्राणी हैं, तरु, लता, गुल्म इत्यादि स्थावर प्राणी; चींटी, चिड़िया, मनुष्य, देवता इत्यादि जङ्गम प्राणी, प्रत्येक मनुष्य को इतना वेदादि शास्त्रसम्मत दायित्व प्राप्त है कि अपने**

जीवन का उपयोग और विनियोग चतुर्दश भुवनात्मक ब्रह्माण्ड में जितने स्थावर-जङ्गम प्राणी हैं सबके पोषण में करे। महोपनिषत् का वचन है ***वसुधैव कुटुम्बकम्।*** गरुड़ पुराण के अंतिम अध्याय का अंतिम श्लोक क्या है? ***सर्वेषां मङ्गलं भूयात्, सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्।*** छान्दोग्योनिषत् का वचन क्या है? ***सर्वं खल्विदं ब्रह्म,*** गीता का वचन क्या है - ***वासुदेवः सर्वमिति।*** गीता में एक ही सूक्ति दो बार प्रयुक्त हुई है- ***सर्वभूतहिते रताः,*** सब प्राणियों के हित में हमारे जीवन का प्रतिक्षण उपयोग और विनियोग हो। ***'तयोर्व्यष्टि समिष्टिता'*** **व्यष्टि का समष्टि के साथ समष्टि का व्यष्टि के साथ तादात्म्य है। इसलिये कोई व्यक्ति समष्टि का शोषक होकर अपना पोषक बन जाये, सम्भव नहीं है।** तो मैंने एक संकेत किया। धृतराष्ट्र को विदुर जी ने कहा - दो प्रकार के व्यक्ति समझाने पर भी न समझते हों तो दण्डाधिकारी का कर्तव्य है कि उनको दण्ड दे। वो दो प्रकार के व्यक्ति कौन हैं? ***धन्वन्तमदातारं दरिद्रं चातपस्विनम्...*** धनी होकर के भी, समृद्ध हो करके भी अदाता है अर्थात् जहाँ अपनी सम्पत्ति का, समृद्धि का, प्रज्ञाशक्ति का, प्राणशक्ति का, जीवनी शक्ति का उपयोग करना चाहिये वहाँ नहीं करता है, ऐसा धनी दण्ड का पात्र है।

बुरा न मानें... वह दरिद्र भी... ***दरिद्रं चातपस्विनम्...*** दरिद्र है, देह, इन्द्रिय, प्राण, अंतःकरण में कार्य करने की क्षमता भगवान् की

कृपा से सुलभ है, हाथ पर हाथ रखता है लेकिन... कोई दे दे... कोई दे दे... श्रम से, तपस्या से जीविकोपार्जन से वञ्चित रहता है तो ऐसा दरिद्र भी यदि समझाने पर नहीं समझता तो वह भी दण्ड का पात्र है। हर दरिद्र कृपा का पात्र नहीं है। दण्डाधिकारी का कर्तव्य है कि उस दरिद्र को बार-बार सूचना देने पर, चेतावनी देने पर, प्रबोधित करने पर भी अगर वह नहीं मानता है, जो दरिद्र होकर भी दाने-दाने के लिये मोहताज होकर भी, कार्य करने में समर्थ होने पर भी परिश्रम नहीं करता, स्वधर्म का पालन नहीं करता जीविकोपार्जन के लिये, उचित प्रयास नहीं करता तो उसे भी दण्ड देना चाहिये। अब दण्ड बहुत कठोर दिया है - ***गले बध्वा दृढां शिलाम्...*** दण्डाधिकारी का कर्तव्य है कि गले में मजबूत रस्सी से वजनदार गुरुत्वयुक्त पत्थर को बांधकर जलाशय में डुबा दे। कम्युनिस्टो सुन लो। जब धार्मिक शासन था, इस नियम का अनुपालन होता था तो कम्युनिज्म की धारा में कौन बह सकता था? हमारा प्रमाद ही.... दण्डाधिकारी का दायित्व था इन दो प्रकार के व्यक्तियों को समझाने, बुझाने पर भी अगर ना समझें तो दण्ड दे। दण्ड में शिथिलता के कारण ही यह कम्युनिज्म विस्फोट है। माने हमारी त्रुटि का परिचायक है। कम्युनिज्म को कोसने से वह दूर नहीं हो जायेगा। हम अपने प्रमाद को दूर कर दें तो अपनेआप कम्युनिज्म की आवश्यकता ही नहीं रहेगी। मैंने एक संकेत कर दिया - **धन्वन्तमदातारं दरिद्रं चातपस्विनम्।**

आप चाहें तो प्रयोग कर सकते हैं, मैं तो यात्रा के समय प्रतिदिन प्रयोग करता हूँ, आपको सुनकर आश्चर्य होगा कि शङ्कराचार्य के पद से एक डाकू का नाम ये लेते हैं? श्री राम-कृष्ण आदि का नाम तो लेना ही चाहिये, कीर्तन भी मैं करता हूँ करवाता हूँ लेकिन जब मैं यात्रा करना प्रारम्भ करता हूँ तो एक डाकू का नाम लेता हूँ। जचे तो कल से / आज से आप भी नाम लीजियेगा, महाभारत के अनुसार डाकू का नाम लेता हूँ, उस डाकू का नाम आप भी सुन लीजिये - 'कायव्य'। आपको आश्चर्य लगता होगा? श्री राम, कृष्ण, गणेश जी का नाम लेकर तो यात्रा करनी ही चाहिये लेकिन डाकू का नाम लेने से क्या लाभ होगा? भगवान् वेदव्यास जी ने उस डाकू के नाम का महत्व ख्यापित किया है। कायव्य नामक एक डाकू था (महाभारत)। वह क्या करता था? जो धनाढ्य व्यक्ति होते थे, समृद्ध व्यक्ति होते थे, दस पीढ़ी के लिये धन इकट्ठा करनेका व्यामोह रखते थे, अपनी सम्पत्ति का उपयोग जहाँ-जहाँ करना चाहिये देवता, पितर, ऋषि आदि के लिये, पड़ोसियों के लिये, परिवार के लिये, यहाँ तक कि जो दीनता-दरिद्रता के चपेट में पड़े हैं, जहाँ-जहाँ अपनी सम्पत्ति का उचित मात्रा में उचित ढंग से उपयोग करना चाहिये, नहीं करते थे, उनको चेतावनी देने पर भी कदाचित् वह नहीं मानते थे तो गिरोह बना करके उनकी अतिरिक्त सम्पत्ति को लूट लेते थे। साल भर के लिये राशन-पानी की व्यवस्था

रहने देते थे। घर की किसी बहू-बेटी के शील का अपहरण नहीं करते। उसको जान से मारते नहीं थे। उसकी अतिरिक्त सम्पत्ति का अपहरण कर लेते थे। उस अपहरण की हुई सम्पत्ति से एक दाना भी अपने मुँह में या परिवारके पोषण में नहीं लगाते थे, जहाँ जहाँ पोषण की अपेक्षा थी वहाँ बाँट देते थे। इसके फलस्वरूप क्या हुआ कि जब उस कायव्य नामक डाकू ने देहत्याग दिया, उसको दिव्यलोक की प्राप्ति हुई। और भगवान कृष्णद्वैपायन वेदव्यास... कम्युनिस्टों सुन लो... श्री राम, कृष्ण का नाम लेकर, गणेश जी का नाम लेकर यात्रा करें ये तो ठीक है ***विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा***... उस कायव्य नामक डाकू का स्मरण करके, नाम उच्चारण करके जो चलता है शेर, व्याघ्र, डाकू, तस्कर, चोर किसी के चपेट में वह नहीं पड़ता, अन्न-जल की कमी नहीं रहती, उसकी यात्रा सुखद होती है। एक डाकू के नाम की इतनी महिमा वेदव्यास जी ने गा दी। और कहा कि यात्रा के समय 'कायव्य' का नाम अवश्य लेना चाहिये। महाभारत शान्तिपर्व में आया है - 'असाधुओं से, जो ऐसे व्यक्ति हैं समृद्ध तो हैं लेकिन सम्पत्ति पर अपना अधिकार जमाए हुए हैं, किसी अन्य के उपयोग में अपनी सम्पत्ति का उपयोग ना करके, दस व्यक्तियों को सुबुद्ध स्वावलम्बी न बनाकर, दस पीढ़ी के लिये धन इकट्ठा करने का व्यामोह है, उनसे धन को छीनकरके उचित स्थल पर जो वितरण कर देता है वह भगवान का हृदय जीत लेता है, लोक और परलोक में वह विजयश्री प्राप्त करता। इसका मतलब

इन सब नियमों का जब पालन होता था तो कम्युनिज्म की धारा में भला कौन बहने का प्रयास करता?

कल भी मैंने कहा था *'राज्यं पण्यं न कारयेत्'* राजा का **दायित्व है / शासक का दायित्व है कि व्यक्ति को, समाज को, परिवार को, प्रांत को, राष्ट्र को, मर्त्यलोक को बाजार का सौदा न होने दे। आज जो शिक्षण पद्धति है, हर व्यक्ति बाजार का सौदा होने के लिये तैयार किया जाता है और शोषक बनाया जाता है। आज जो शिक्षण संस्थानों में व्यक्ति जाता है वह बिकने के लिये जाता है या नहीं? बाजार का सौदा.... जिस शिक्षा पद्धति ने हर व्यक्तिको बाजार का सौदा बना दिया, जिस शासनतन्त्र ने हर व्यक्ति को बाजार का सौदा बना दिया, उसके द्वारा क्या राष्ट्र उत्कर्ष को प्राप्त हो सकता है?** *'राज्यं पण्यं न कारयेत्'*... उपलक्षण है। हर व्यक्ति का दायित्व है कि अपने जीवन को बाजार का सौदा ना बनावे। शिक्षण संस्थान तो बाजार का सौदा बना हुआ है। कल्पना कीजिये एम.एससी. होने में, डॉक्टर होने में, इंजीनियर होने में, पायलट होने में, चार्टर्ड अकाउंटेंट होने में... और बहुत से पद हैं, **किसी के पिता/अभिभावक ने प्राथमिक कक्षा से लेकर 50 लाख रुपया खर्च किया उसकी पढ़ाई पर, उसे डिग्री / डिप्लोमा दिलवाने के लिये तो 50 करोड़ पर हाथ मारे बिना वो रहेगा क्या?** जिस देश में हर व्यक्तिको शोषक के रूप में तैयार किया जाता हो वह शोषण करने

के लिये बाध्य होगा। जिस परिवार ने अपने एक बालक को / बालिका को सुयोग्य बनाने के नाम पर 50 लाख रुपया खर्च कर दिया, उस परिवार से या उस उस सुशिक्षित व्यक्ति से आप आशा कर सकते हैं कि वो पोषक होगा? वह तो अनिवार्य है कि शोषक हुए बिना नहीं रहेगा। बुरा ना मानो... एक व्यक्ति ने, दिल्ली की बात है नाम नहीं लूँगा, एक पार्टी की बात है... चुनाव की... बहुत पहले की बात है... एक पुत्र ने कहा - पिताजी कुछ रुपये चाहियें खर्च के लिये, पिता रो पड़े। केजरीवाल जी मेरे बहुत प्रिय हैं, सुन लें, उन्हीं की पार्टी की बात है। किसी व्यक्ति को टिकट दी गई चुनाव के लिये... उसने कहा - बेटा मेरे पास कुछ भी नहीं है, टिकट मिलने के लिये 7 लाख देने पड़े और हार भी गया, अब मेरे पास कुछ नहीं है। कल्पना कीजिये... और भी बहुत सी पार्टियाँ हैं, हर पार्टी की प्रायः यही स्थिति है। अब **कोई एम.एल.ए / एम.पी की टिकट मिलने के नाम पर 10 करोड़ / 5 करोड़ / 7 लाख देगा तो एम.एल.ए / एम.पी बनकर वह राष्ट्र की सेवा करेगा या जितना खर्चा हुआ है एम.एल.ए / एम.पी की टिकट में और फिर चुनाव के प्रचार में, उससे 25 गुणा, 50 गुणा वसूलेगा? इसका मतलब हर व्यक्ति को शोषक जहाँ बनाया जाता हो, हर व्यक्ति जहाँ पर बाजार का सौदा ही बनाया जाता हो उस राष्ट्र का उत्कर्ष कैसे हो सकता है? इस पर भी विचार करने की आवश्यकता है।**

और एक विचित्र बात है,... मैं संकेत ही कर सकता हूँ... एक कहावत है उत्तर प्रदेश में... मैं अधिकतर उत्तर प्रदेश में ही रहा हूँ... *'अंधी पीसे, बिल्ली खाये'*। एक विचार करने की आवश्यकता है, पृथ्वी के जो धारक तत्व हैं... जैसे इस भवन में मैं बैठा हूँ, इसकी जो दीवाले हैं, छत को साधने वाली जो सामग्री है उसको कोई तोड़ दे तो इस भवन का क्या होगा, छत कैसे टिकेगी? **पृथ्वी को धारण करने वाले जितने स्तम्भ हैं, तत्व हैं उन सबको नष्ट करने का नाम ही आजकल विकास है।** स्कंद पुराण का एक वचन मैं पढ़ता हूँ और महाभारत का एक वचन मैं संकेत में कहता हूँ। फिर से सुनिए, स्कंद पुराण में आया है -

गोभिर्विप्रैश्च वेदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः। अलुब्धैर्दानशीलैश्च सप्तभिर्धार्यते महीः।।

पृथ्वी को धारण करने वाले सात तत्व होते हैं। स्कंद पुराण का वचन है, भगवान् वेदव्यास विरचित। पृथ्वी को धारण करने वाले सात तत्व होते हैं -

गोभिः - गोवंश

शास्त्रसम्मत विधा से यज्ञ का सम्पादन जिनके माध्यम से होता है, जिनके बिना शास्त्रसम्मत यज्ञ की निष्पत्ति नहीं हो सकती, वे सब पृथ्वी के धारक हैं। और पृथ्वी जो है छान्दोग्य उपनिषद् के अनुसार... यहाँ रहने वाले जो हम आप हैं... बाकी जो 13 लोक हैं, उनके प्राणी हैं, मर्त्यलोक में भी जो स्थावर आदि प्राणी हैं, सबके

पोषण में मनुष्य ही अधिकृत है। एक मनुष्य का दायित्व होता है प्राणीमात्र का पोषण करने में अपने जीवन का उपयोग करना।

तो मैंने संकेत किया, सात तत्वों पर विचार कीजिये, पृथ्वी के धारक तत्व हैं - ***गोभिः,*** सबसे पहले गोवंश का नाम लिया गया। छल-बल डंके की चोट से गोवंश की प्रजाति को विलुप्त करने का भारत में अभियान चल रहा है। किसी महानुभाव ने कहा था *'गौरक्षक गुंडे ',* इससे गौभक्तों का हौसला पस्त हो गया और गौहत्यारों का हौसला बुलंद हो गया या नहीं? ये गोरक्षा का मार्ग है? सुप्रीम कोर्ट से भी कहलवा दिया गया *'गौरक्षक गुंडे ',* ऐसे शब्दों का प्रयोग करने पर गोवंश की रक्षा हो सकती है? ***गोभिः*** - गोवंश पृथ्वी का धारक है। द्रुतगति से उसका विलोप हो रहा है। मुझे मालूम है अच्छी तरह है, आयु मेरी छोटी थी, लेकिन मैंने सुना है अष्टमीचन्द जी मुजफ्फरनगर, उन्होंने मुझे बताया कि **अंग्रेज़ों के जो अराजकतत्व कार्यकर्ता थे, जहरीला इंजेक्शन लेकर घूमते थे, हृष्ट-पुष्ट सांड को इंजेक्शन लगा देते थे ताकि गोवंश की प्रजाति दुर्बल हो जाये, विलुप्त हो जाये। यह षड्यंत्र किया गया।** इसी प्रकार स्वतन्त्र भारत में, आदित्यनाथ योगी जी मेरे बड़े लाडले-प्यारे हैं, बहुत बुलंदी से काम कर रहे हैं, 28 वर्षों से वे परिचित हैं, जब वो पद पर आरूढ़ हुए मुख्यमन्त्री बने, तब उन्होंने कट्टी खाने को बंद करवाया उत्तर प्रदेश से। बहुत विरोध हुआ तो उनको क्या कहना पड़ा मालूम है ? 'मैंने अवैध कट्टी खाने को बंद किया'। इससे पोल-

पट्टी समझ में आ गई पूर्व सरकारों की। माने उत्तर प्रदेश में दो प्रकार के कट्टी खाने हो गये, एक वैध और एक अवैध। अवैध कट्टी खाने को बंद किया... इसका मतलब मुख्यमन्त्री को भी वैध कट्टी खाने की ओर तो आँख उठाने का साहस नहीं करना चाहिये, यही अर्थ हुआ न? मैंने 'अवैध' कट्टी खाने को बंद किया इसका मतलब दो प्रकार के कट्टी खाने हो गये। **जिस देश में गोवंश को कटवाकर धन प्राप्त करने का व्यामोह हो, वह देश कभी उठ सकता है? ऐसे राजनेता और राजनीतिक दल क्या एक क्षण भी शासन करने योग्य हैं?**

चारागाह को भी खा लिया.... एक विचित्र बात कहता हूँ, सुनिये। कुछ महीने पहले, इस कोरोना बीमारी से पहले मैं राजस्थान की यात्रा पर था, एक-दो ऊँट दिखाई पड़े। ऊँट की प्रजाति का विलोप किसने किया जी? ट्रक ने किया, ट्रैक्टर ने किया। जब हम महायन्त्रों के माध्यम से काम लेने लगे तो हमारे जो आश्रित पशु थे और जो हमारे लिये उपयोगी थे उनकी प्रजाति का विलोप हो गया। गधे की प्रजाति... भारत की अपेक्षा पाकिस्तान में गधे अधिक हैं। **माने ट्रक, ट्रैक्टर आदि महायन्त्रों के माध्यम से हमने प्राणियों की, उपकारक प्राणियों की, वन्य प्राणियों की प्रजाति के विलोप का मार्ग प्रशस्त किया है। इसी प्रकार स्थावर प्राणियों की.. वन को काट-काट करके हमने प्रजातियों को विलुप्त करने का काम किया है। यह विकास के नाम पर विनाश नहीं है तो क्या है?**

विप्रैश्च - सदाचार सम्पन्न वेदज्ञ ब्राह्मण। आप गाली किसी को दे दीजिये लेकिन **धर्मशास्त्र की रचना ब्राह्मणों ने की, अकिञ्चन ब्राह्मणों ने, शीलोञ्छ वृत्ति से जीवन निर्वाह करने वाले ब्राह्मणों ने अर्थशास्त्र विश्व को दिया, कामशास्त्र विश्व को दिया, धर्मशास्त्र विश्व को दिया, मोक्षशास्त्र विश्व को दिया।** ये अंग्रेज़ों के षड्यंत्र के कारण ब्राह्मणों को पानी पी पीकर गाली दी गई। उनकी प्रजाति को विलुप्त करने का प्रयास किया गया। पृथ्वी के धारक तत्व जो ब्राह्मण होते थे, सदाचार संयम सम्पन्न वेदज्ञ ब्राह्मण उनको विलुप्त करने का आज भी षड्यंत्र चल रहा है।

वर्णसंकरता, कर्मसंकरता विकास की कसौटी है या विनाश की कसौटी है जी? घोड़े को वर्णसंकर बना दीजिये, हाथी को वर्णसंकर बना दीजिये, अगली प्रजाति का क्या होगा? इसलिये **गोभिर्विप्रैश्च... ब्राह्मणों के अस्तित्व को विलुप्त करने का षड्यंत्र पृथ्वी को दूषित करने का षड्यंत्र है पृथ्वी को रसातल में पहुँचाने का षड्यंत्र है।**

आपको सुनकर आश्चर्य होगा, मैं एक ही वाक्य बोल दूँ.. कैकेयी ने एक विचित्र पहेली प्रस्तुत की महाराजाधिराज दशरथ के सामने, रामचरितमानस के अनुसार - हे राजन्, एक कालावच्छेदेन (एक साथ) दो काम नहीं हो सकते। कदाचित् कोई गाल फुला कर

रहे तो ठहाका मारकर हँस नहीं सकता। कदाचित् कोई ठहाका मारकर हँसे तो गाल फुला कर रह नहीं सकता। इस दृष्टांत को मैं दार्शनिकता का रूप देता हूँ - महायन्त्रों का प्रचार आविष्कार और प्रयोग भी हो, कोई दिव्य वस्तु या व्यक्ति भी शेष रह जाये, सम्भव नहीं। 10 करोड़ रुपए खर्च कर लीजिये 10 सेमिनार लगा लीजिये, मैं एक प्रश्न देता हूँ उसका उत्तर निकालकर दिखाइए मुझे बहुत प्रसन्नता होगी - **गोवंश का, विप्रों का, सतियों का, सत्यवादियों का, निर्लोभ व्यक्तियों का, दानशीलों का द्रुतगति से विलोप क्यों? इस पर 10 करोड़ रुपया खर्च करने पर भी संतोषजनक उत्तर प्राप्त होना कठिन है। पृथ्वी के जितने धारक तत्व हैं छल बल डंके की चोट से उनका विलोप हो रहा है।** मैंने एक दिन उदाहरण दिया था - वाल्मीकि रामायण में आया कि हनुमान जी ने पराक्रम दिखाया लंका को जला दिया, बाद में सोचा कहीं अशोक वाटिका भी तो नहीं जल गई। अशोक वाटिका जल गई तो जिस अशोक वृक्ष के नीचे भगवती देवी सीता विराजमान थीं वो भी तो नहीं जल गयीं ! अगर ऐसा ही हुआ तो मुझ जैसा मूर्ख कौन होगा? सुग्रीव को मुख कैसे दिखाऊँगा, राम जी के दरबार में कैसे जाऊँगा? मैं जीवित रहने का अधिकारी नहीं रह गया।

अरे भाई विकास विकास विकास.. **हम भी विकास के पक्षधर हैं लेकिन पृथ्वी को धारण करने वाले जितने तत्व हैं सबके विनाश का नाम ही विकास आज है।** *अंधे पीसे बिल्ली खाये।* **गोभिर्विप्रैश्च**

वेदैश्च... मुक्तिकोपनिषद् के अनुसार 1180 शाखाएँ वेद की थीं। सीतोपनिषद् के अनुसार 1135 शाखाएँ वेद की थीं। सूतसंहिता और व्याकरण महाभाष्य के अनुसार 1131 शाखाएँ वेद की थीं। कम से कम 1131 अधिक से अधिक 1180 शाखाओं का वर्णन कहाँ-कहाँ है, मैंने संकेत किया। आजकल पूरे विश्व में सर्व विज्ञान के स्रोत, सर्व कलाओं के स्रोत वेदों की कुल 8-9 शाखाएँ प्राप्त हैं। उनके जानकारों की भी द्रुतगति से विलुप्ति हो रही है।

सतीभिः **:-** फैशन के नाम पर, अश्लील मनोरंजन के नाम पर, मादक द्रव्यों के नाम पर देवियों के सतीत्व का अपहरण हो रहा है। मादक द्रव्य के नाम पर सतीत्व का विलोप हो ही रहा है। इसका मतलब क्या है? देखिए मनोविज्ञान तो मानना ही पड़ेगा। जिन सबपर प्रहार करते थे मनुवादियों पर उन सबको मानने के लिये विवश कर दिया इस रोग (कोरोना) ने या नहीं किया? गीता का तेरहवाँ अध्याय लीजिये - ***विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि*** (गीता 13.11)

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् (गीता 13.12)

इसका मतलब क्या हुआ जी?

विविक्त देश - शांत और एकांत स्थान में रहिए। और

अरतिः जनसंसदि :- विषयलम्पट, रोगी, कोढ़ी, दरिद्र मानें मलिनता से युक्त व्यक्ति का सम्पर्क मत कीजिये। तो मनुस्मृति को

गाली देते-देते.. मनुस्मृति के सारे नियमों का पालन करने को इस रोग ने बाध्य कर दिया या नहीं? मनु जी ने लिखा दूसरे की पहनी हुई जूती, चप्पल आदि मत धारण करो, दूसरे के द्वारा पहना हुआ वस्त्र मत धारण करो, जहाँ कहीं मल-मूत्र, थूक का त्याग मत करो। घुमा फिरा करके जिसको हम गाली देते थे.... ये छोड़ दीजिये दूसरे की बात। अपने जो निम्न कोटि के अङ्ग हैं या दाँत हैं, मुँह है उनको मत खोओ। अपने शरीर से भी परहेज़ किया जा रहा है। अत्यावश्यक होने पर फिर किस प्रकार हाथ को स्वच्छ करो कि इस बिमारी के चपेट से... तो जो विधि-निषेध रागपूर्वक, द्वेषपूर्वक, कोरी भावुकतापूर्वक, अविवेक पूर्वक नहीं जीवनी शक्ति की रक्षा के लिये निर्धारित किये थे उनको कोसते-कोसते आजकल इस बीमारी ने सब के प्रति आस्था उत्पन्न कर दी या नहीं? तो ***गोभिर्विप्रैश्च वेदैश्च सतीभिः...*** सतियों का द्रुतगति से विलोप हो रहा है।

सत्यवादियों का द्रुतगति से विलोप हो रहा है। आपको सुनकर प्रसन्नता होगी श्रीमद्भागवत में कलियुग का लक्षण लिखा है। तुलसीदास जी महाराज ने अपने शब्दों में एक श्लोक का अनुवाद कर दिया - ***झूठइ लेना झूठइ देना। झूठइ भोजन झूठ चबेना।*** तुलसीदास जी प्रायः ध्यान रखते हैं कि बन सके तो 'रा' और 'म'.. राम... दोनों अक्षर हर पंक्ति में / दोहे में आवें नहीं तो कम से कम 'रा' तो आ ही जाये, या 'म' तो आ ही जाये। ऐसी पंक्ति जानबूझकर

तुलसीदास जी ने बना दी जिसमें न 'रा' है न 'म' है। ***झूठइ लेना झूठइ देना। झूठइ भोजन झूठ चबेना।....*** ये कलियुग का लक्षण है। इसका मतलब क्या है? पृथ्वी को धारण करने वाले सत्यवादी हैं। विश्वासपात्र सत्यवादी होते हैं। मेरे ऊपर हर तन्त्र की आस्था क्यों हैं? मालूम है झूठ नहीं बोलते, मालूम है किसी का अहित नहीं करते, मालूम है किसी के अहित में इनकी कोई चेष्टा नहीं होती। इसलिये पूरा विश्व मेरे प्रति आस्थान्वित होता है। क्यों? झूठ नहीं बोलता। ऐसा कोई काम नहीं करता सोचता भी नहीं किसी का अहित हो। तो **गोभिर्विप्रैश्च वेदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः।...**

अलुब्धैः - निर्लोभ व्यक्ति।

और ***दानशीलैश्च :-*** बुरा न मानो होली है... अरबों की सम्पत्ति पर हाथ मारने का अवसर हो लेकिन एक रुपया भी गलत ढंग से न ले, ऐसे व्यक्ति।

जो जहाँ है वहीं शोषण कर रहा है, जो जहाँ है वहीं शोषण कर रहा है। दस पीढ़ी के लिये धन.... और दानशील... दानशीलों का तो... जमाई को दान देते हैं। जहाँ दान देना चाहिये वहाँ दान नहीं देते, दानशीलों का अभाव है या नहीं?

तो **गोभिर्विप्रैश्च वेदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः। अलुब्धैर्दानशीलैश्च सप्तभिर्धायते महीः...** इन सातों का द्रुतगति से विलोप हो रहा है या नहीं? क्यों? उत्तर वही एक है। जब मैं बचपन में देखता था ठेले पर कुछ सामान बेचने लोग आते थे, हर माल साढ़े छः आने। हर माल साढ़े छः आने.. रुमाल भी ले लो और खिलौना भी ले लो... हर माल साढ़े छः आने। यह जो सात वस्तुओं का द्रुतगति से विलोप हो रहा है... **महायन्त्रों का प्रचुर आविष्कार और प्रयोग भी होता रहे और कोई दिव्य वस्तु या व्यक्ति विशेष रह जाये, सम्भव नहीं।** ईश्वर के संकल्प से केवल बीज की रक्षा हो सकती है।

सात और तत्व हैं... प्रकारांतर से... वेदव्यास जी के द्वारा विरचित महाभारत में जो पृथ्वी को धारण करते हैं, इन सातों का द्रुतगति से विलोप हो रहा है। विकास के जितने पक्षधर हैं उन्हें इन सब वचनों पर ध्यान देना चाहिये -

धर्मः कामश्च कालश्च वसुर्वासुकिरेव च। अनन्तः कपिलश्चैव सप्तैते धरणीधराः।।

ये पृथ्वी के ये सात धारक हैं।

धर्मः - धर्म नामक पुरुषार्थ।

अब लोग कहने लग गए.. किसी परिस्थिति में सुप्रीम कोर्ट में शिवसेना ने उस वाक्य को डलवाया था परिस्थिति विशेष में - ' हिंदू

धर्म नहीं है। एक विचारधारा है '। माने धर्म शब्द का हम उच्चारण करेंगे तो मानो हम पतित सिद्ध हो जायेंगे! बताओ।

तुलसीदास जी ने कलियुग का लक्षण बताया - ***'सुख चाहहिं मूढ़ न धर्म रता'। धर्म के मार्ग पर चलने पर, न्याय के मार्ग पर चलने पर ही सुख मिलता है। धर्म के फल को तो सब चाहते हैं लेकिन धर्म में रुचि नहीं।*** अब व्यक्ति को कहना पड़ता है ' हिंदू धर्म नहीं एक विचारधारा है '... भले आदमी... ऐसे डरपोक बनने से क्या काम चलेगा?

संकेत मैं करता हूँ कौन धर्म का खण्डन कर देगा?

अन्वर्थ क्या होता है- ***धारणात् धर्म।*** महाभारत शांतिपर्व, महाभारत कर्णपर्व, मत्स्यपुराण का अवलोकन कीजिये... ***धारणात् धर्म..*** ये सिद्ध कोटि के धर्म का लक्षण है। पृथ्वी धर्म है क्योंकि वह पार्थिव प्रपञ्च का धारक है, प्राणियों का धारक है। जल धर्म है, तेज धर्म है, वायु धर्म है, आकाश धर्म है... ये सब धारक हैं। पृथ्वी का धारक जल, जल का धारक तेज, तेज का धारक वायु, वायु का धारक आकाश, आकाश का धारक अव्यक्त, अव्यक्त का धारक परमात्मा। ***धारणात् धर्म... अंत में...*** कठोपनिषद् में आत्मा या परमात्मा का नाम धर्म है। अगर धर्म की इस ढंग से व्याख्या की गई होती, लोगों तक यह पहुँचाई गई होती तो धर्म शब्द से प्रेम होता या धर्म शब्द का उच्चारण सुनने पर 'हम संकीर्ण न सिद्ध हो जायें' ऐसी भावना जगती? ये संकीर्णता है क्या? ***धारणात् धर्म।***

अब साध्य कोटि के धर्म हैं यज्ञ, दान, तप, व्रत, योग आदि। एक विचित्र बात है ***'यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्।'*** (गीता 18.5)। **जिससे देह, इन्द्रिय, प्राण, अन्तःकरण सहित जीव में अद्भुत बल और वेग का सञ्चार हो, भगवत्प्राप्ति के अनुकूल, सर्वहित के अनुकूल बल और वेग का सञ्चार हो उसका नाम साध्य कोटि का धर्म है।** सिद्ध कोटि के धर्म का विरोध तो कोई कर ही नहीं सकता। मैंने जिस ढंग से व्याख्या की उस ढंग से व्याख्या शास्त्रों के आधार पर अगर जगह-जगह की जाये, पहुँचाई जाये तो कौन धर्म का विरोधी होगा? हर व्यक्ति कहेगा कल से 'हम भी धार्मिक', 'हम भी धार्मिक'... ***धारणात् धर्म।***

अब साध्य कोटि का ले लीजिये - महाभारत में लिखा है - **यज्ञ** - यज्ञ का अर्थ क्या हुआ जी - द्रव्य त्याग का बल और वेग होगा तब तो यज्ञ करेंगे न? यज्ञ साध्य कोटि का धर्म है। **हमारे यहाँ यज्ञोपवीत, विवाह, यज्ञ... केवल एक व्यक्ति के पेट में अन्न जाता है क्या? कितने व्यक्तियों का पोषण होता है। श्राद्ध ले लीजिये, तर्पण ले लीजिये, हव्य ले लीजिये, कव्य ले लीजिये... इसका मतलब हमारे जितने आचार विचार हैं अधिक से अधिक व्यक्तियों के पोषण में और गुप्त रीति से सबके पोषण में उनका उपयोग और विनियोग होता है।** तो द्रव्य को कस के पकड़ेगा कोई व्यक्ति तो यज्ञ कर सकता

है क्या? नहीं कर सकता। तो त्याग का अद्भुत बल और वेग यज्ञ के द्वारा प्राप्त होता है। अगर हम कसकर धन को पकड़ेंगे तो जहाँ देना चाहिये... ***देयं दीनजनाय च वित्तम्*** - भगवान् शङ्कराचार्य ने लिखा। दान हम कर सकते हैं क्या? तो यज्ञ के द्वारा जीवन में अद्भुत बल और वेग प्राप्त होता है या नहीं? जिसके जीवन में त्याग का अद्भुत बल और वेग होगा वैधानिक ढंग से- ***त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्*** (गीता के अनुसार)। दान के द्वारा भी हमारे जीवन में त्याग के अद्भुत बल और वेग का सञ्चार होता है या नहीं? और व्रत करेंगे तो क्या जी? निर्जला एकादशी इत्यादि.. तो भोग का परित्याग करना ही पड़ेगा। और तप करेंगे तो सुख का परित्याग करना ही पड़ेगा। और महाभारत में लिखा है शांतिपर्व में योग का आलम्बन लेंगे तो सर्वस्व का त्याग करना पड़ेगा। इसका मतलब क्या है? सर्वस्व त्याग करने से शांति मिलेगी या अशांति मिलेगी? कल मैंने उदाहरण दिया था इसी उदाहरण को देकर मैं वचन को विराम देता हूँ - थोड़ा विचार कीजिये.. गाढ़ी नींद में अभानात्मक वियोग सबका होता है। देखिये रिश्तेदार / नातेदार / पत्नी इन सबकी बात छोड़िए... कल्पना कीजिये कोई विश्वसुंदर हो... जैसे हमारे नकुल, सहदेव में - नकुल कौन थे उस समय? पुरुषों में विश्वसुंदर। द्रौपदी कौन थी? विश्वसुंदरी। दमयन्ती कौन थी? विश्वसुंदरी। और नल कौन थे? विश्व सुंदर। दोनों का जीवन बिल्कुल संयत। उसी प्रकार मैं संकेत करता हूँ - कोई विश्वसुंदर हो या विश्वसुंदरी, अपने वदनारविन्द को देखते

रहें या दर्पण के माध्यम से अपने मुखारविंद को देखता रहे या देखती रहे तो पागल हो जायेंगे या नहीं? जीवन में गाढ़ी नींद का वेग ही त्याग का अद्भुत बल और वेग भरने में समर्थ है या नहीं? अपना मुखचंद्र भी कोई देखना पसंद नहीं करता, वदनारविन्द भी देखना पसंद नहीं करता। पत्नी, बेटे, पोतों के मुख की बात, भवन की बात, नोटों के बण्डल की बात छोड़ दीजिये... गाढ़ी नींद तब तक प्राप्त नहीं हो सकती जबतक इन्द्रियों के त्याग का बल न हो। इन्द्रियाँ सोयेंगी, इन्द्रियों का अभानात्मक वियोग होगा तब तो गाढ़ी नींद प्राप्त होगी। और गाढ़ी नींद प्राप्त नहीं होगी तो पागल हुए बिना नहीं रहेंगे। इन्द्रियों को भी सुलाते हैं। माने इन्द्रियों के भी त्याग का बल और वेग हमको गाढ़ी नींद का वेग प्राप्त होने पर प्राप्त होता है या नहीं? मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार अगर फुदकते रहें, संकल्प, विकल्प, निश्चय, गर्व इत्यादि करते रहें तो हम पागल हो जायेंगे या नहीं? अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार से भी ऊपर उठने की भावना जगती है या नहीं? प्राण बहुत प्यारा है लेकिन प्राण स्पंदन पर भी ध्यान दें तो पागल हो जायेंगे। प्राणों को भी भुलाकर सोने की भावना गाढ़ी नींद का वेग प्राप्त होने पर जगती है या नहीं? अरे सुख बहुत प्यारा है... कल भी मैंने कहा था... सुख बहुत प्यारा है लेकिन विषयजन्य आनन्द को ही पकड़े रहें तो पागल होंगे या नहीं? दुःख की बात तो छोड़ दीजिये, विषयजन्य आनन्द भरपूर हो, यहाँ तक मैंने कहा था - 'मर्त्यलोक में सर्वोत्कृष्ट आनन्द जिसको सुलभ है

उसकी अपेक्षा ब्रह्माजी को प्रति क्षण व्यवहार दशा में एक हज़ार परार्ध गुण अधिक आनन्द प्राप्त है। 1 के बाद 20 शून्य लिखें तब जो सँख्या होती है उसका नाम परार्ध है। ब्रह्माजी का पद कितना बढ़िया... जीवन कितना बढ़िया.. उनके अन्तःकरण में कितनी क्षमता कि वो क्या करें... सुखस्वरुप परमात्मतत्व को अभिव्यक्त करने में कितना स्फुट उनका जीवन होगा कि मर्त्यलोक में सर्वोत्कृष्ट आनन्द जिसको सुलभ है, मानसानन्द जिसका तैत्तिरीय उपनिषद् में नाम है उसकी अपेक्षा एक हज़ार परार्ध गुण अधिक आनन्द प्रति क्षण ब्रह्माजी को व्यवहार दशा में प्राप्त होता है। गीता के आठवें अध्याय का कल मैंने उद्धरण दिया था - वे ब्रह्माजी भी विषयजन्य आनन्द से ऊपर उठते हैं, त्याग करते हैं तब गाढ़ी नींद होती है। तो त्याग का बल और वेग मैंने कहा। लेकिन एक चीज़ है - **गाढ़ी नींद में मृत्यु, जड़ता, दुःख का बीज, द्वंद्वों का बीज, काम-क्रोध आदि का बीज विद्यमान है। उस बीज का भी त्याग अध्यात्मविद्या के बल पर कर दें तो सिद्धों के सिद्ध, पीरों के पीर, मस्तों के मस्त, औलियाओं के औलिया, फकीरों के फकीर, अवधूतों के अवधूत हो जायें।** गाढ़ी नींद में द्वंद्वों की पहुँच नहीं है, सर्दी-गर्मी आदि की, काम-क्रोध आदि मनोविकार की पहुँच नहीं है, गाढ़ी नींद में मृत्यु के भय की पहुँच नहीं है। गाढ़ी नींद में दैहिक, दैविक, भौतिक त्रिविध ताप की पहुँच नहीं है। इसका मतलब मृत्यु से अतिक्रान्त जीवन हमको हो जाता है, दुःख से अतिक्रान्त जीवन हो जाता है। केवल इन सबका जो

बीज विद्यमान है अज्ञान उस अज्ञान को तत्त्वज्ञान रूपी अग्नि से भून दें तो...।

हम कहाँ तक पहुँचे थे... यज्ञ के द्वारा, दान के द्वारा द्रव्य त्याग का बल और वेग प्राप्त होता है अर्थात् सबके पोषण में हमारे जीवन का उपयोग होता है। इसी प्रकार जब हम व्रत रखते हैं तो भोग के त्याग का, तप करते हैं तो सुख के त्याग का... तपस्वी अगर सुख चाहे तो... देह, इन्द्रिय, प्राण, अन्तःकरण को तप्त करेगा तो सुख का भी त्याग करना पड़ता है। और अध्यात्म विद्या के लिये तो सर्वस्व त्याग। सर्वस्व माने किसी के प्रति राग नहीं, किसी के प्रति द्वेष नहीं, किसी के प्रति अहंता नहीं, किसी के प्रति ममता नहीं।

मैं एक संकेत करके वचन को विराम देता हूँ - असल में कुएँ में भाँग पड़ी है। एक होता है आरोह क्रम, एक होता है अवरोह क्रम। हमारे यहाँ सृष्टि का वर्णन अवरोह क्रम से है। महाभारत में दो जगह आया है - जिस क्रम से सृष्टि की उत्पत्ति होती है ठीक उसके विपरीत क्रम से सृष्टि का संहार होता है। ***तस्माद्वा एतस्मात् आत्मनः आकाशः सम्भूतः*** (तैत्तिरीयोपनिषद्, पैङ्गलोपनिषद्)। परमात्मा से आकाश, आकाश से वायु, वायु से तेज, तेज से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से पार्थिव प्रपञ्च। निर्विशेष से सन्निकट सविशेष... इस क्रम से सृष्टि चलती है। अब अगर हम सृष्टि विज्ञान को जानें तो कोई देहात्मवादी

हो ही नहीं सकता है भौतिकवादी हो ही नहीं सकता है। इसको छोड़ दिया तो नीचे से चलें... नीचे से जब हम चलेंगे तो पार्थिव प्रपञ्च को मानेंगे, पृथ्वी को मानेंगे, जल को मानेंगे, तेज को मानेंगे, वायु तक हमारी दृष्टि जायेगी वह भी अतीन्द्रिय। वायु आदि का जो रूप है उस पर दृष्टि नहीं जायेगी। आकाश तक तो आजकल के वैज्ञानिकों की दृष्टि भी नहीं गई कि आकाश है क्या बला। ईथर आदि तो गैस है। वह तो रूप युक्त है। इसका मतलब क्या - नीचे से जब हम चलेंगे, शास्त्र का आलम्बन नहीं लेंगे तो देहात्मवादी बन के रह जायेंगे, भौतिकवादी बन के रह जायेंगे। *हाथी के पाँव में सबका पाँव।* ऊपर से हम सृष्टि का क्रम देखेंगे, उसके पीछे हमारे पास पर्याप्त युक्ति है, 10 मिनट की सीमा में नास्तिक शिरोमणि भी आस्तिक हो सकता है। गुरु, ग्रंथ और गोविन्द की कृपा से वह विद्या हम लोगों को प्राप्त है। लेकिन मैंने संकेत किया ऊपर से चलेंगे तो हम आस्तिक हुए बिना नहीं रहेंगे। और अर्थ के जितने स्रोत हैं.. मैंने प्रवचन को जहाँ से आरम्भ किया था वहीं विराम देना उचित समझता हूँ...

आज के प्रवचन का सार निकला - तीन प्रकार की क्रान्ति। कौन-कौन सी? रक्त क्रान्ति, हरित क्रान्ति, श्वेत क्रान्ति - अव्यक्तोनिषद्। रक्त नाम है यहाँ पर परमात्मा का, हरित नाम है प्रकृति का, श्वेत नाम है पञ्चभूत का। तीन प्रकार की क्रान्ति है। इसका मतलब - नीचे से.. पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश ये अर्थ

हैं। इनको दूषित मत कीजिये, विलुप्त मत कीजिये, जर्जर मत कीजिये, कुपित मत कीजिये, क्षुब्ध मत कीजिये। प्रकृति को भी दूषित मत कीजिये, क्षुब्ध मत कीजिये और परमात्मा से विमुख मत होइए। अर्थात् पृथ्वी अर्थ है, जल अर्थ है, तेज अर्थ है, वायु अर्थ है, आकाश अर्थ है, प्रकृति अर्थ है, परमात्मा अर्थ हैं। यह अर्थ की पूर्ण मीमांसा हो गई। इनका सदुपयोग होना अर्थ है।

तो आज हमने कहा कि अर्थ की समग्र परिभाषा क्या होगी? अर्थ की समग्र परिभाषा यही होगी कि प्रयोजन और प्रयोजन की सिद्धि की सामग्री का नाम अर्थ है। भोग्य पदार्थ का नाम अर्थ है। जब हम कहते हैं भोग्य पदार्थ का नाम अर्थ है तो अपने आप अर्थ का अर्थ हो जाता है अन्न। पृथु जी के चरित्र में... और अन्न भी... मैंने अन्न की ऐसी व्याख्या की श्रीमद्भागवत के चतुर्थ स्कंध से... जिस पर आप लट्टू हो जायेंगे.. हम तो लट्टू हैं ही उस वचन पर - पुष्टि और प्रमोद की सामग्री का नाम अन्न है। **आपको सुनकर आश्चर्य होगा वेद भी अन्न है। ऋषियों का अन्न कौन है जी - वेद।** तो वेद कहाँ से.... पृथ्वी चरम कार्य है न तो उसमें जल भी है.. नमी जो है पृथ्वी में वह जल के कारण है ना, ऊष्मा जो पृथ्वी में है वह तेज के कारण है या नहीं? जीवनी शक्ति जो पृथ्वी में है वह वायु के कारण है या नहीं? छिद्र जो पृथ्वी में है जिससे अनाज उत्पन्न होते हैं वह आकाश के कारण है या नहीं? पृथ्वी माने फलात्मक है, चरम कार्य

है। पृथ्वी का मूर्त रुप ही गोवंश को दिखाया गया / गाय को दिखाया गया पृथु जी के चरित्र में। पृथ्वी के दोहन से गाय के दोहन से सत्रह प्रकार के अन्न उत्पन्न हुए। समस्त अर्थ का उद्गम स्थान भूमि है। उसमें गंधर्व का नाच गान भी अन्न है। अब हमारे लिये विद्या... हमको भोजन दीजिये मालपुआ, रबरी, कचौरी.. यह सब दे दीजिये, लेकिन हमको पढ़ने पर प्रतिबंध लगा दीजिये, चिंतन पर प्रतिबन्ध लगा दीजिये तो हमतो बिल्कुल शरीर से सूख जायेंगे। हमारा जीवन वेद है, हमारा जीवन ज्ञान है। नृत्य भी, प्रमोद भी, सिद्धियाँ भी अन्न हैं। इसका मतलब पुष्टि और प्रमोद की जो भी सामग्री है उसी का नाम अन्न है।

तो हमने आज संकेत किया, बहुत प्रसन्नता हुई महानुभावों ने अत्यंत अभिरुचि का परिचय दिया, वैदुष्य का परिचय दिया, अपनत्व का परिचय दिया, आस्था का परिचय दिया। हम प्रमुदित हैं।

★★★★★